भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

A Peer Reviewed and Refereed Journal

अतिरिक्तांक २०१७

ISSN 0973-9777
GISI Impact Factor 3.5628
अतिरिक्तांक २०१७

एम.पी.ए.एस.वी.ओ.
द्वारा आन्वीक्षिकी सदस्य
सहसंयोजन से प्रकाशित

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ० मनीषा शुक्ला, maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो० विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ०प्र०, भारत

डॉ० नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद, उ०प्र०, भारत

प्रो० उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ०प्र०, भारत

सम्पादक

डॉ० महेन्द्र शुक्ल, डॉ० अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ० मंजू वर्मा, डॉ० अमित जोशी, डॉ० अर्चना तिवारी, डॉ० सीमा रानी, डॉ० सुमन दुबे, डॉ० सच्चिदानंद द्विवेदी, डॉ० मनोज कुमार अग्निहोत्री, पाल सिंह, डॉ० पौलमी चटर्जी, डॉ० राम अग्रवाल, डॉ० शीला यादव, डॉ० प्रतीक श्रीवास्तव, जय प्रकाश मल्ला, डॉ० त्रिलोकीनाथ मिश्र, प्रो० अंजली श्रीवास्तव, विजय कुमार प्रभात, डॉ० जे०पी० तिवारी, डॉ० योगेश मिश्रा, डॉ० पूनम सिंह, डॉ० रीता मौर्या, डॉ० सौरभ गुप्ता, डॉ० श्रुति विग, दीप्ति सजवान, डॉ० निशा यादव, डॉ० रमा पद्मजा वेदुला, डॉ० कल्पना बाजपेयी, डॉ० ममता अग्रवाल, डॉ० दीप्ति सिंह, डॉ० आभा सिंह, डॉ० अरूण कान्त गौतम, डॉ० राम कुमार

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

पी० त्रिराची (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक, थाईलैंड), डॉ० सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), माजिद करीमजादेह (ईराक), मोहम्मद जारेई (जाहेदान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेदान, ईरान), डॉ० होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल, maheshwar.shukla@rediffmail.com

पाठकों से

आन्वीक्षिकी, भारतीय शोध पत्रिका प्रत्येक दो माह (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर एवं नवम्बर) पर एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण वाराणसी उ०प्र०, भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में आन्वीक्षिकी, भारतीय शोध पत्रिका 6 भाग हिन्दी एवं 6 भाग अंग्रेजी एवं 3 अतिरिक्तांकों के भाग में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 5000+1000/- डॉक शुल्क, एक प्रति 1300+100/- डॉक शुल्क, वैदेशिक : 6000+डॉक खर्च, एक प्रति 1000+डॉक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। आन्वीक्षिकी एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है, अतः किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें -

B32/16A-2/1, गोपालकुंज, नरिया, लंका वाराणसी, उ०प्र०, भारत, पिन कोड- 221005, मो०नं० 09935784387,

टेलीफोन नं० 0542-2310539, E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com

मिलने का समय : 3-5 दिन (रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन : एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण

प्रकाशन तिथि : 9 जनवरी 2018

मनीषा प्रकाशन

(व्यापारी संख्या V-34564, पंजीकरण संख्या 533/ 2007-2008, B32/16A-2/1, गोपालकुंज, नरिया, लंका, वाराणसी उ०प्र०, भारत)

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

अतिरिक्तांक २०१७

शोध प्रपत्र

कबीर की दृष्टि में नारी विमर्श -डॉ0 अंशुमाला मिश्रा 1-19

रेहन पर रग्घू में परिवर्तित पारिवारिक सम्बन्ध -अंजुबाला 20-30

दिनकर की अपने समय के प्रति संवेदनशीलता -सारिका चौधरी 31-36

ब्रिक्स (BRICS) देशों में भारत के आर्थिक विकास का तुलनात्मक परिदृश्य -डॉ0 शिखा दीक्षित 37-40

आतंकवाद भगवान महावीर या महाविनाश -डॉ0 संगीता जैन 41-44

स्त्रियों के प्रति अम्बेडकर का योगदान -डॉ0 धनञ्जय कुमार 45-47

गाँधी जी का राजनीतिक दर्शन और वर्तमान राजनीति -डॉ0 सीमा रानी 48-50

नीति आयोग : भारत में नियोजन का बदलता स्वरूप -डॉ0 शिखा दीक्षित 51-53

भारत में विनिवेश की भूमिका -डॉ0 सिद्धार्थ पाण्डेय 54-59

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,1-19**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 मई 2016

कबीर की दृष्टि में नारी विमर्श

डॉ० अंशुमाला मिश्रा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *कबीर की दृष्टि में नारी विमर्श* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंशुमाला मिश्रा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

कवि कबीरदास का नाम हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में अत्यन्त प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण है। कवि कबीर की तीन महत्वपूर्ण रचनाओं साखी, रमैनी, सबद के अध्ययनोपरान्त ज्ञात होता है कि कवि कबीर ने अपने साहित्य में विभिन्न दृष्टिकोणों से नारी विमर्श किया है। कवि कबीर सब के पहले पद्य में स्त्री पुरूष के प्रेम के सम्बन्ध में बताते हुए कहते हैं कि प्रेम का मर्म अवर्णनीय है। इसे गुरू की सहायता से ही प्राप्त किया जा सकता है। उसके अनुभव से संसार में आवागमन मिट जाता है। कबीर १४९ दोहा में कहते हैं सौभाग्यवती बहुओं तुम मंगलगीत गाओं मेरे घर राजा राम पधारे हैं। यहाँ स्पष्ट है कि मध्यकाल में स्त्रियों को धार्मिक मंगल गीत गाने एवं समारोहों में समुपस्थित होने का अधिकार प्राप्त था। ९७६ दोहों में कबीर ईश्वर की प्रेमिका के रूप में स्वयं को अभिव्यक्त कर रहे हैं। स्पष्ट है मध्यकाल में स्त्री का रूप प्रेमिका का भी हुआ करता था जो अपने प्रेमी को आकृष्ट करने के लिए तरह–तरह के साज श्रृंगार किया करती थी। आगे १९४ दोहा में कबीर ने विरहिणी की आधीरता का वर्णन किया है एवं यह भी बताया है कि वन्ध्या स्त्री प्रसव वेदना का अनुभव नहीं समझ सकती है।

आगे उन्होंने बताया है कि विरहिणी स्त्री किस प्रकार तड़पती है और अपने स्वामी से मिल जाने पर ही उसी पीड़ा शक्ति होती है। कबीर ने २११ दोहा में पुजारिन स्त्री का वर्णन किया है, जो ईश्वर की उपासना के लिए फूल पत्ती तोड़ती है स्पष्ट है मध्यकाल में स्त्रियों को मंदिर में जाकर पूजा करने का अधिकार प्राप्त था। दोहा २६२ में कबीर ने ऐसी स्त्री के बारे में व्याज से वर्णन किया है जो अपने सुहाग को प्राप्त कर लेने के बाद ही भाग्यमान बन जाती है। यहाँ स्पष्ट है परमात्मा रूपी प्रियतम के लिए सभी जीव रूपी नारियाँ एक समान हैं यह भी अर्थ लगाया जाता है। कबीर स्वयं को ईश्वर की दुल्हन के रूप में देखते थे ऐसा वर्णन ३३९ दोहे में आया है। सबद के दोहों के सन्दर्भ में यदि नारी विमर्श किया जाता है, तो सारा अर्थ व्याज से ही लग पायेगा क्योंकि सारे दोहे अत्यन्त दार्शनिक दोहे हैं। जिसमें कोई कथा या कहानी नहीं है।

* वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जगत तारन गर्ल्स डिग्री कॉलेज (सम्बद्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय) इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2017, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

कबीर ने साखी में कामी 'नर को अंग' नामक २०वें पाद में कामिनी स्त्रियों का वर्णन किया है एवं उनके निकट आने वाले पुरुषों के नाश का वर्णन किया है। आगे ५२वें पाठ 'सुन्दरि को अंग' में सुन्दरी स्त्रियों का वर्णन किया है। देखा जाय तो यह ग्रन्थ अत्यन्त दार्शनिक है।

कबीर ने रमैनी में प्रथम दोहे में नारी का वर्णन किया है। कबीर कहते हैं कि उस परम ज्योति की इच्छा नारीरूप से अवतरित है।

कबीर ने नारी को सृष्टि का आदि कारण माना है। कबीर दूसरे दोहे में कहते हैं ज्योति शब्द हुई है और शब्द से नारी। यहाँ कबीर ने एक शब्द को ज्योति एवं नारी दोनों के लिए प्रयोग किया है। दोहा १५ में कबीर कहते है कि प्रिया अपने प्रियतम से मिलने जा रही है और मेघ घिर गया है। वर्षा से बचने के लिए प्रिया ने कम्बल डाल रखा है। ज्यों–ज्यों पानी पड़ता है त्यों त्यों कंबल भारी हो रहा है। यहाँ कबीर ने उस प्रिया की विवशता के बारे में बताया है जो अपने प्रिय से मिल नहीं पाती है। यहाँ कबीर जीव के बारे में प्रिया के रूपक से समझा रहे हैं।

इस प्रकार कबीर ने अनेक उदाहरणों के माध्यम से ईश्वर एवं जीव का दार्शनिक वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है। उनके ग्रन्थ के कुछ महत्वपूर्ण दोहों को विस्तार में पढ़कर आइयें जाने क्या है कबीर का नारी विमर्श?

मध्यकालीन कवियों में कबीर का नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कवियों में से है जिन्होंने अपनी रचनाओं में नारी विषय तत्त्व का वर्णन किया है। इस दृष्टि से कबीर की साखी, रमैनी, सबद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं जिनमें नारी विमर्श के तत्त्व मौजूद हैं आइए देखें नारी के विषय में कबीर की क्या दृष्टि है –

जीव रूप यक[१] अन्तर–वासा, अन्तर ज्योति[२] कीन्ह परगासा[३]। इच्छा रूप नारि अवतरी, तासु नाम गायत्री[४] धरी। तेहि[५] नारि के पुत्र तिन[६] भयऊ[७], ब्रह्मा विष्णु[८] महेश[९] नाम धरेऊ। तब[१०] ब्रह्मा पूछल महतारी, को[११] तोर पुरुष काकरि[१२] तुम नारी। तुम[१३] हम हम तुम और न कोई, तुम[१४] मोर पुरुष हमैं[१५] तोरि जोई।। साखी– बाप पूत की एकै नारी, ओ[१६] एकै माय बिआय। ऐसा पुत सपूत न देख्यो[१७], जो[१८] बापै[१९] चीन्है धाय।।१।। अर्थात् प्रस्तुत रमैनी की प्रथम पंक्ति में 'यक' शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसका भाव है– एक, अखण्ड, देश–काल के भेद से रहित पारमार्थिक ज्योति। यही ज्योति जीव रूप के भीतर भी वास करती है (अन्तरवासा)। सबके भीतर वही ज्योति प्रकाशमान है। उपनिषद् का ब्रह्म के विषय में यह कहना है– 'तच्छृष्ट्वा तदेवानु–प्राविशत्' अर्थात् जीव की सृष्टि करके वह उसमें प्रवेश कर गया।

उस परम ज्योति की इच्छा नारीरूप से अवतरित है। 'नारी' कहने की तात्पर्य यह है कि उसी से सब सृष्टि होती है। 'नारी' शब्द 'नृ' धातु से निष्पन्न हुआ है– 'नृणाति नयति संसृतिम् इति नारी' अर्थात् जो संसृति का नयन करती है, वह है नारी। शांकर मत के अनुसार ब्रह्म अपनी शक्ति माया में प्रतिबिम्बित होकर जीव बनता है और इसी माया से अनादि काल से जीव होते रहते हैं। कश्मीरी शैव–दर्शन के अनुसार इच्छा उसकी शक्ति है। माया उसके स्वातंत्र्य से होती है। इच्छा ही उसका स्वातंत्र्य है। उस स्वातंत्र्य द्वारा ही जान–बूझकर शिव जीवरूप धारण करता है। वस्तुत: परम शिव और उसका स्वातंत्र्य–इच्छा एक ही हैं। किन्तु इच्छा से सृष्टि प्रारम्भ होती है, जो कि धीरे–धीरे परिमितता की ओर प्रवृत्त हो जाती है। यह इच्छा ही शुद्ध विद्या के अनन्तर माया का रूप धारण कर लेती है, जिसके कारण भेद और परिमितता की अभिव्यक्ति होती है। शांकर–वेदान्त के अनुसार निर्गुण ब्रह्म माया से उपहित होकर सगुण कहलाता है। आचार्य शंकर मायोपहित चैतन्य को 'ईश्वर' कहते हैं। माया के ही द्वारा सृष्टि होती है। वहाँ इच्छा का उल्लेख नहीं है।

बाप बेटे की पत्नी एक ही है। एक ही माँ के सभी पुत्र हैं। पिता को पहचानने वाले पुत्र बिरले ही होते हैं। इस कथन का तात्पर्य यह है कि वास्तविक रूप से चेतन आत्मा एक है। देहाभिमान से स्त्री–पुरूष के भेद हो जाते हैं। चेतन पुरुष है। जिससे सृष्टि होती है वह उसका स्वातंत्र्य, इच्छा, माया या नारी है।

शैवागम के अनुसार परम चैतन्य की तीन शक्तियाँ हैं– इच्छा, ज्ञान, क्रिया। चेतन पहले इच्छा करता है, तब ज्ञान होता है और अन्त में क्रिया। मनुष्य में पहले ज्ञान होता है, तब इच्छा और अन्त में क्रिया।

'माता' और 'माया' दोनों मे एक ही धातु है– मा। 'माता' का अर्थ है– गर्भ में माप (निर्माण) करके बाहर फेंक देने वाली और 'माया' भी वह शक्ति है, जो माप या निर्माण करती है– मीयते अनया इति माया।

माया पत्नी भी है और माता भी। इसके दो अर्थ निकलते हैं– १. कारण रूप माया ईश्वर के प्राकट्य में सहायक होती

है और कार्यरूप माया जीव की सृष्टि में सहायक बनती है। परन्तु कार्य–कारण में कोई भेद नहीं है। इसीलिए पितारूप ईश्वर और पुत्ररूप जीव दोनों की एक ही नारी हुई। २. ईश्वर माया में कर्म–बीज का वपन करता है और जीव उसी से भोग पाता है। इसीलिए माया दोनों की नारी है।

अन्तर जोति[२०] सब्द[२१] यक नारी, हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी। ते तिरिये[२२] भग लिंग अनन्ता, तेऊ न जाने[२३] आदि[२४] औ अंता। बाखरि[२५] एक विधातैं[२६] कीन्हा, चौदह टहर पाट[२७] सो लीन्हा। हरिहर ब्रह्मा[२८] महतो नाऊँ, तिन्ह[२९] पुनि तीनि[३०] वसावल गाऊँ। तिन्ह[३१] पुनि रचल पिंड[३२] ब्रह्मंडा, छव[३३] दरसन छानवे पाषंडा। पेटे[३४] न काहू[३५] वेद पढ़ाया, सुनति[३६] कराय तुरुक नहिं आया। नारी मोबित गर्भ प्रसूती, स्वाँग धरै बहुतै[३७] करतूती। तहिया हम तुम एकै लोहू, एकै प्रान[३८] वियापै मोहू। एकै[३९] बालक भग द्वारे आया, भग भोगे[४०] ते पुरुष कहाया। अविगत की गति काहु न जानी, एक जीभि कत कहउँ बखानी। जौ[४१] मुख होय जीभि दस लाखा, तौ कोई आय महंतो भाखा। साखी–कहहिं कबीर पुकारि के, ई लयऊ[४२] व्यैहार। राम[४३] नाम जाने बिना, भव[४४] बूड़ि मुवा संसार।।२।। अर्थात् सभी के अन्दर एक ज्योतिस्वरूप चेतन्य आत्मा है। ब्रह्म में जो स्पन्दन होता है, वह शब्द है, वही उसकी माया है, वही नारी है। ब्रह्म चैतन्य है, सत्य है, अपरिणामी है, अखण्डानन्द है।

कबीरदास भी कहते हैं कि ज्योति से शब्द हुआ और शब्द से नारी या माया। माया से उपहित चैतन्य से ब्रह्मा, विष्णु, महेश हुए। यहाँ 'एक' शब्द मध्यमणिन्याय से 'जोति' और 'नारी' दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

उनई[४५] बदरिया परिगौ[४६] संझा[४७], अगुआ बनखंड मंझा[४८]। पिया अनते धनि[४९] अन्ते[५०] रहई, चौपारि[५१] कामरि माथे गहई। साखी–फुलवा भार न लै"[५२] सकै, कहै सखिन सो रोय। ज्यों–ज्यों कामरी, त्यों–त्यों भारी होय।।५।। अर्थात् इस रमैनी में कबीर ने एक सुन्दर रूपक बाँधा है। इसमें प्रस्तुत कथन यह है कि प्रिया अपने प्रियतम से मिलने के लिए जा रही है। इसी बीच मेघ घिर आये हैं, रिमझिम वर्षा प्रारम्भ हो जाती है, अन्धकार छा जाता है, सामने अरण्य है और पथ–प्रदर्शक (दूती) स्वयं रास्ता भूल गया है। वर्षा से बचने के लिए प्रिया ने सिर पर चौपार्ता कम्बल डाल रखा है। ज्यों–ज्यों पानी पड़ता है, वह कम्बल भारी होता जाता है और बेचारी प्रिया अपने प्रिय से मिल भी नहीं पाती।

बेचारा जीव चारों अवस्थाओं अथवा अन्त:करण चतुष्ट्य का भार सम्हाल नहीं पाता और अन्य सभी जीवों से रोकर अपनी दु:खद कहानी कहता है कि ज्यों–ज्यों कंबल भीगता जाता है अर्थात् अवस्था ज्यों–ज्यों बढ़ती जाती है या अन्त:करण ज्यों –ज्यों विषयों में फंसता जाता है, त्यों–त्यों यह कम्बल रूपी शरीर और बोझ बनता जाता है।

चोंतिस अच्छर का इहै विशेखा, सहसों नाम इहै[५३] मँह देखा। भूमि भटकि नर फिरि घट[५४] आया, हो[५५] अज्ञान सो सभन्हि गँवाया। खोजहि ब्रह्मा विस्नु[५६] सिव सक्ती, अमित[५७] लोक खोजहि बहु भक्ती। खोजहि गन गंधर्व मुनि देवा, अमित[५८] लोक खोजहिं बहु भेवा[५९]। साखी– जती सती सभ खोजहिं, मनहिं[६०] न मानैं हार। बड़–बड़ जीव[६१] न बांचि हैं[६२], कहहिं कबीर पुकारि[६३]।।२५।। अर्थात् यती अर्थात् योगी, संन्यासी, सती अर्थात् पतिव्रता स्त्रियाँ अथवा सत्यव्रतधारी सभी अपने बाहर ही सत्य को खोजते–फिरते हैं और कभी मन में हार नहीं मानते। कबीर पुकार कर कहते हैं कि बड़े–बड़े जीव भी जो सत्य को बाहर खोजते घूमते हैं, नहीं बच सकेंगे अर्थात् सदा अज्ञान और भ्रम में पड़े रहेंगे।

आपुहि[६४] करता भया कुलाला[६५], बहु विधि बासन गढ़ै कु भारा[६६]। विधिना[६७] सभै कीन्ह यक ठाँऊँ, जतन अनेक के बने बनाऊँ[६८]। जठर अगिनि मँह दीन्ह प्रजारी, तामे आपु भया प्रतिपाली। बहुत जतन करि[६९] बाहर आया, तब सिव सक्ती नाम धराया। धर का[७०] सुत जो होय अयाना, ताके सँग न जाहिं सयाना। साँची बात कहीं मैं अपनी, भया दिवाना और की सपनी[७१]। गुप्त प्रकट है एकै दूधा, काको कहिए ब्राह्मन सूदो[७२]। झूठ[७३] गर्भ भूले मति कोई, हिन्दू तुरुक झूठ कुल दोई।। साखी– जिन यह चित्र बनाइया, साँचा सो सुतधारि[७४]। कहह कबीर ते जन भले, (जे) चित्रवंतहि लेहिं बिचारि।।२६।।

इस रमैनी का रूपक इस प्रकार है– परमात्मा कुम्भकार के समान है। अन्तर यह है कि कुम्भकार को उपादान कारण मिट्टी को बाहर से लेना पड़ता है। किन्तु परमात्मारूपी कुम्भकार को बाह्य सामग्री नहीं लेनी पड़ती है। यह तथ्य 'आपुहि' शब्द से ध्वनित होता है। जैसे कुम्भकार एक ही मिट्टी से नाना प्रकार के बर्तन बनाता है, वैसे ही परमात्मा पंचमहाभूत, मन, इन्द्रिय आदि साधनों से अनेक प्रकार के जीवों की सृष्टि करता है। जैसे कुम्भकार बर्तन बनाकर आवाँ में वैसे ही परमात्मा गर्भाशयरूपी आवाँ में नाना प्रकार के जीव–जन्तुओं को परिपक्व करता है और उस असहाय अवस्था में उनका प्रतिपालन करता है। जैसे सभी बर्तन एक ही मिट्टी के बने होते हैं, केवल कार्य के अनुसार उनका नाम–रूप भिन्न होता है, वैसे ही सभी जीव एक ही पंचमहाभूत

आदि से बने हैं, केवल कार्य के अनुसार उनका नाम–रूप भिन्न है।

ब्रह्मा को दीन्हो ब्रह्मण्डा, सात द्वीप पुहुमी नव खण्डा। सत्त[७५] सत्त कै बिस्नु दिठाई, त्रीनि लोक मँह राखि[७६] निजाई। लिंग रूप तब संकर कीन्हा, धरती कीलि[७७] रसातल दीन्हा। तब अष्टंगी रची कुमारी, तीनि–लोक मोहिनि सभ झारी। दुतिया नाम पारवर्ती भैऊ, ताप[७८] करते संकर कँह दैऊ। एकै पुरुष एक है नारी, ताते रचेउ[७९] खानि[८०] भौ चारी। सर्मन वर्मन देव और दासा, रज–सत[८१] तमगुन धरति[८२] अकासा। साखी– एक अंड ओंकार ते, सब जग भयो पसार। कहहिं कबीर सव[८३] नारि के, अविचल पुरुष भतार।।२७।। अर्थात् उस परमज्योति ने ब्रह्मा को ब्रह्माण्ड पर अर्थात् पृथ्वी और उसके सात द्वीपों और नव खण्डों पर अधिकार दिया। सत्य रूप विष्णु को अधिष्ठित किया और उन्होंने तीनों लोकों में अपनी निजाई अर्थात् प्रभुत्व को स्थापित किया। लिंगरूप शंकर द्वारा धरती से रसातल तक मिलित कर दिया। फिर अष्टांगी कुमारी को रचा। अष्टांगी का भाव गीता के निम्न श्लोक से स्पष्ट होता है– *भूमिरोऽनलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव च। अहंकार इतीयं में भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।* (७/४) अर्थात् मेरी अष्टधा प्रकृति इस प्रकार है– भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार। यहाँ अष्टांगी प्रकृति ही कुमारी है। इसने तीनों लोकों को मोहित कर दिया है। उसी शक्ति का दूसरा नाम पार्वती है जो कि तपस्या द्वारा शंकर को मिली।

वस्तुत: एक ही सत्पुरुष है और उसकी इच्छा या माया ही यह एक नारी है जिससे चारों खानि या आकार (अण्डज, स्वेदज, जरायुज, उद्भिज) बने। संसार में चारों वर्ण शर्मन (ब्राह्मण), बर्मन (क्षत्रिय), देव (वैश्य), दास (शूद्र) आदि भी उसी ने रचा। धरती, आकाश और तीनों गुण–सत रज–तम उसी के द्वारा रचे गये।

एक बीज रूप ओंकार से सारे संसार का प्रसार हुआ। कबीर का कथन है कि एक ही अविनाशी पुरुष अर्थात् राम या सत्पुरूष सबके भर्त्ता हैं और जगत् में अन्य जो कुछ भी है, वह सब उसी भर्त्ता की भार्या है।

कहइत मोहि भयल जुग चारी, समुझत नाहिं मोह[८४] सुत नारी। बंस[८५] आगि लगि बंसै जरिया, भर्म भूलि नर धंधे[८६] परिया[८७]। हस्तिनि[८८] फंदे हस्ती रहई, मृगी के फंदे मृगा परई। लौहे[८९] लोह जस[९०] काटि सयाना, त्रिया कै तत्तु त्रियै पै[९१]/ साखी–नारि रचंते पुरुषा, रचंते नार। पुर्षहिं पुर्षा जो रचै, सो[९२] बिरला संसार।।५०।। अर्थात् कबीर कहते हैं कि मुझे उपदेश करते हुए चार युग बीत गये अर्थात् काल–कालान्तर से सद्गुरु एक सामान्य उपदेश देते आये हैं, किन्तु लोग पुत्र–पत्नी आदि के मोह में पड़े रहते हैं और उस उपदेश को समझने की चेष्ट नहीं करते। जैसे बाँस की रगड़ बाँस में आग लग जाती है और वह जल जाता है, वैसे ही मनुष्य अज्ञान के कारण भूलकर कर्म में आसक्त रहता है और उसी कर्म की आसक्त रहता है और उसी कर्म की आसक्ति से नष्ट हो जाता है। जैसे हाथी हथिनी से आकृष्ट होकर शिकारियों द्वारा बंधन में पड़ता है, जैसे मृगी से आकृष्ट होकर मृग जाल में फँसता है, जैसे चतुर लोगों के द्वारा लोहा लोहे से काटा जाता है और जैसे स्त्री के रहस्य को स्त्री द्वारा जाना जाता है, वैसे ही मनुष्य (अज्ञानी) के द्वारा ही मनुष्य फँसता है।

नारी पुरुष में अनुरक्त होती है और पुरुष नारी में। किन्तु जो पुरुष–पुरुष में अनुरक्त होता है, ऐसा पुरुष संसार में विरला ही होता है।

गये राम और गये लछमना, संग न गई सीता अस[९३] धना। जात कौरवहिं[९४] लागु न बारा, गये भोज जिन साजल धारा। गये पंडु[९५] कुन्ती सी[९६] रानी, सहदेवहु[९७] जिन बुधि मति ठानी। सर्वे[९८] सोन की लंक उठाई, चलत बार कछु संग न लाई। जाकी पुरी[९९] अंतरिछ छाई, सो हरिचन्द देखल[१००] नहिं जाई। मुरुख मानुस बहुत सँजोवै, अपने मरे अवर लगि रोवै। ना[१०१] जानै अपनों मरि जैबे, टका[१०२] दस बढ़ै अवर लै खैबे।। साखी – अपनी करि गये, लागि न काहु के साथ। अपनी करि गो[१०३] रावणा, अपनी दसरथ नाथ।।५५।। अर्थात् लक्ष्मण मृत्यु को प्राप्त हुए और राम भी उससे न बच सके। उनकी सीता जैसी पतिव्रता पत्नी भी मृत्यु के समय उनके साथ न जा सकीं। कौरव जैसे प्रतापी राजाओं को भी इस संसार से जाने में विलम्ब न लगा। राजा भोज, जिन्होंने धारा नगरी को सुन्दर रूप से सजाया था, वह भी इस लोक से चले गये। पाण्डु जैसे राजा गये और उनकी कुन्ती जैसी रानी भी इस लोक से चली गईं। वह सहदेव भी गये जिन्होंने मति और बुद्धि दोनों को निश्चित रूप से सिद्ध कर लिया था।

रावण जिसने सारी लंका को सोने से बनवाया था, वह भी संसार से चलते समय कुछ साथ न ले जा सका। राजा हरिश्चन्द्र, जिनका महल गगनचुम्बी था, वह भी अब नहीं दिखलाई देते अर्थात् वह भी मृत्यु को प्राप्त हुए।

विचारहीन मनुष्य बहुत कुछ संग्रह करता है। वह नहीं जानता है कि उसकी धन–सम्पत्ति उसके मारने पर यहीं रह जायेगी। वह पुत्र–पत्नी आदि के लिए तो रोता रहता है, किन्तु यह नहीं सोचा कि वह स्वयं ही एक दिन संसार से चला जायेगा।

नारि[१०४] एक संसारहि आई, माय न बाके, बाप[१०५] न जाई। गोड़ न मूड़ न प्रान अधारा, तामँह भरमि[१०६] रहा संसारा। दिना सात लौं[१०७] बाकी सही, बुध अदबुध अचरज का[१०८] कही। बाकी बंदन करू[१०९] सब कोई, बुध अदबुध अचरज बड़ होई।। साखी– मूस बिलाई एक संग, कहु कैसे रहि जाय। संतो[११०] अचरज देखहू, हस्ती सिंघहि खाय।।७२।। अर्थात् संसार में एक माया रूपी नारी विद्यमान है जिसके कारण संसरण होता रहता है। उसकी न माँ का पता है न पिता का। वह माता–पिता से उत्पन्न नहीं, अनादि है। यद्यपि उसका पृथक् विशिष्ट रूप नहीं है, उसके सिर पैर, प्राण आदि का आधार नहीं है अर्थात् वह अरूप है, फिर भी संसार के लोग उसी में आसक्त होकर भटकते फिरते हैं। ज्ञानी और अज्ञानी सभी लोग उसे सब दिन (बराबर) सत्य समझते रहते हैं। (यहाँ 'दिना सात' काल का उपलक्षण है)। इस आश्चर्य की बात को मैं क्या कहूँ? ज्ञानी–अज्ञानी सभी उसी वन्दना करते हैं अर्थात् उसके प्रभाव से रहते हैं। यही बड़ा आश्चर्य है।

चली जात देखी एक नारी, तर गागरि ऊपर पनिहारी। चली जात वह बाटहिं बाटा, सोवनहार के ऊपर खाटा। जाड़न मरै सपेदी सौरी[१११], खसम न चीन्है घरनि[११२] भौ बौरी। साँझ सकार दिया[११३] लै बारै, खसम[११४] छोंडि सुमिरैं लगवारै। वाही के संग[११५] निसु दिन राची, पिय से बात कहै नहिं साँची। सोवत छाँड़ि चली पिय अपना, ई दु:ख अब दहुँ कहब कैसना।। साखी–अपनी जाँघ उघारि कै, अपनी कही न जाय। की चित जानै आपना, की मेरो जन गाय।।७३।। अर्थात् इस रमैनी में कबीर ने एक उलटवाँसी के द्वारा मानव–चित्त की दो दिशाओं की ओर संकेत करते हुए यह दिखलाया है कि जो उसमें सम्भाव्य क्षमता है, उसका उपयोग न करते हुए वह पराङ्मुखी और विषयोन्मुखी होकर अपने जन्मसिद्ध अधिकार को खो बैठता है। रमैनी के पूर्वार्ध भाग में उन्होंने चित्त की सम्भावना स्थिति का वर्णन किया है और उत्तरार्ध में विद्यमान स्थिति का। वस्तुत: चित्त में दो प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं– प्राय: वह (प्रवृत्ति) पराङ्मुखी रहती है, किन्तु प्रत्यङ्मुखी भी हो सकती है। उसकी ऊर्ध्वगति भी हो सकती है और अधोगति भी; वह कल्याण की ओर भी ले जा सकती है और पाप की ओर भी। व्यास ने 'पातंजल योग' के बारहवें सूत्र के भाष्य में कहा है कि–

रमैनी के पूर्वार्ध में सद्गुरू सुरति की सम्भाव्य क्षमता की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि हमने अपने अनुभव से एक नारी को जल भरने के लिए जाते हुए देखा है, जिसकी गगरी तो नीचे है और वह नारी ऊपर है। गगरी (शरीर) तो नीचे पड़ी हुई है और पनिहारी (सुरति) ऊपर (ब्राह्मण्ड) में बैठी हुई है। वह रास्ते–रास्ते चली जाती है और विचित्रता यह है कि खाट के ऊपर सोने वाली नहीं है, प्रत्युत सोने–वाली के ऊपर खाट है। यहाँ 'नारी' और 'पनिहारी' से तात्पर्य 'सुरति' से है। वह जब प्रत्यङ्मुखी होती है तब कुण्डलिनी का जागरण होता है और वह कुण्डलिनी अट्चक्रों का भेदन करते हुए सहस्त्रार तक पहुँचती है जो कि मस्तिष्क के ऊपर स्थित है। उसी की ओर ऊपर पहुँचकर वह आत्मस्वरूप के अमृत तत्व का अनुभव करती है। सामान्य जन में कुण्डलिनी मूलाधार चक्र के ऊपर ढाई वलयों में प्रसुप्त अर्थात् अनुद्बुद्ध (Dormant) रहती है। इसी को कबीर ने 'सोवनहार' कहा है। वह सुषुम्ना मार्ग से अट्चक्रों का भेदन करती हुई, ऊपर की ओर जाती है। सुषुम्ना नाड़ी ऊपर है, अत: कबीर ने इस तथ्य को 'सोवनहार' कुण्डलिनी है। यत: सुषुम्ना नाड़ी ऊपर है, अत: कबीर ने इस तथ्य को 'सोवनहार के ऊपर खाटा' द्वारा व्यक्त किया है। यहाँ तक 'सुरति' की सम्भाव्य क्षमता का परिचय दिया गया है। इसके आगे बेचारे मानव की विद्यमान स्थिति का वर्णन किया गया है। दु:ख इस बात का है कि स्वच्छ रजाई होते हुए भी मानव शक्ति से मर रहा है। यहाँ 'स्वच्छ रजाई' मानव तन का प्रतीक है जिसमें रहते हुए वह ज्ञान–प्रकाश का लाभ पा सकता है। 'जाड़े' में जड़ता' की व्यंजना है। अपने पास साधन होते हुए भी बेचारा मानव 'जड़ता–जाड़' से आक्रान्त है। तुलसीदास ने भी कहा है– 'जड़ता जाड़ विषम डर लागा, गयउ न मज्जन पावा अभागा।'

'सुरति' रूपी गृहिणी ऐसी बावली हो गयी है कि वह अपने प्रत्यागात्य रूपी चेतन देव को नहीं पहचानती। उस ओर वह नहीं जाती। सायं–प्रात: अर्थात् निरन्तर बाह्याचार रूपी दीपक जलाकर, आत्म–प्रवंचना करती हुई अपने वास्तविक प्रियतम को छोड़कर विषय रूपी जार में आसक्त रहती है। शारीरिक क्रिया से तो वह पूजा–पाठ में लगी रहती है, परन्तु मन से विषयों में रमण करती हुई भी, अपने प्रियतम से इस तथ्य को छिपाती रहती है। वह समझती है कि हम अपने अन्तरात्मा को भुलावा दे सकते हैं। प्रत्यागात्म जो सदा प्रबुद्ध है, उसको वह सोता हुआ समझकर, उसे छोड़कर विषयों की ओर जाती है। यह मार्मिक दु:ख कहो किससे कहें?

एकै काल सकल संसारा, एक नाम है जगत पियारा। त्रिया पुरुष कछु कहल[११६] न जाई, सर्व रूप जग रहा समाई। रूप अरूप[११७] जाय नहिं बोली, हलुका गरुआ जाय न तोली। भूख न तृआ[११८] धूप नहिं छाँहीं, सुख दु:ख रहित रहै तेहि माँहिं।। साखी—आगम[११९] अपार रूप बहु, औ[१२०] अरूप बहु भाय। बहुत[१२१] ध्यान कै जोहिया नहिं तेहि सँख्या आय।।७७।। अर्थात् एक ही काल पुरुष सारे संसार में छा रहा है। वही एक नाम (सार शब्द या आत्मस्वरूप) सारे संसार को प्रिय है। प्रश्न हो सकता है कि यदि वह सबमें व्याप्त है तो वह स्त्री—पुरुष दोनों ही होगा। किन्तु स्त्री—पुरुष शरीर में भेद हैं। आत्मस्वरूप अलिंग है, उसे न स्त्री कह—सकते हैं, न पुरुष। वह सब रूपों में संसार में व्याप्त है। उसे न साकार कह सकते हैं न निराकार; न उसका कोई परिणाम है जिससे उसे हल्का या भारी कहा जाय। उसमें न भूख है, न प्यास; न धूप है, न छाँह। वह सुख—दु:ख दोनों से मुक्त होते हुए उन सबमें विद्यमान है। इस पंक्ति में 'तिहि' सर्वनाम सीधे ढ़ंग से 'सुख—दु:ख' के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। किन्तु यदि 'तिहि' सर्वनाम को आत्मा के लिए माना जाय तो अर्थ होगा— यह अपने स्वरूप में ही रहता है।

मानुष जन्म चूके[१२२] जग माँझी, एहि तन केर बहुत हैं साँझी। तात जननी कहै पुत्र[१२३] हमारा, स्वारथ लागि कीन्ह प्रतिपाला। कामिनि कहै मोर पिय आही[१२४], बाधिनि रूप गरासन चाही[१२५]। पुत्र[१२६] कलत्र रहैं लौ लाए, जम्बुके[१२७] नित्य रहैं मुँह बाए। काग गीध दोउ मरन बिचारैं, सूकर स्वन दोउ पंथ निहारैं। अगिनि कहै मैं ई तन जारौं, पानि[१२८] कहै मैं जरत उबारो। धरती कहै मोहिं मिलि जाई, पौन कहै सँग लेहुँ उड़ाई। जेहि[१२९] घरको घर कहै गँवारा, सो बेरी[१३०] है गले तुम्हारा। सो तन तुम आपन करि जानी, विषय रूप[१३१] भूले अग्यानी। साखी— एतने तनके साझिया, जन्मौ भरि दुख पाव।। चेतत नाहीं बावरा, मोर मोर गोहराव।।७८।। अर्थात् इस रमैनी में मोह के मूल देहाभिमान पर सद्गुरू ने ध्यान आकृष्ट किया है। एक पूर्ववर्ती रमैनी में वह कह चुके हैं कि मनुष्य शरीर ही एक ऐसी योनिं है जिसमें विवेक उत्पन्न हो सकता है और मनुष्य परमार्थ को प्राप्त कर सकता है। यहाँ वह बतलाते हैं कि मनुष्य जन्म पाकर भी वह अज्ञानवश चूक जाता है। यह मानव जीवन की परम विडम्बना है। वह शरीर को आत्मा समझता है, उसमें नित्य अभिमान करता है, उसी को 'अहं' मानता है। वह यह नहीं देखता है कि जिसको वह 'मैं—मेरा' कह रहा है, उसके बहुत हिस्सेदार हैं।

माता—पिता कहते हैं कि यह मेरा पुत्र है। इस शरीर पर वे अपना अधिकार जताते हैं और स्वार्थवश ही अपने पुत्र का लालन—पालन करते हैं। कामिनी (आसक्त नारी) कहती है कि यह मेरा प्रियतम है। जैसे व्याघ्रिणी अपने शिकार को पूरे तौर से खा जाती है, उसी प्राकर वह अपने तथाकथित प्रियतम के धन और शक्ति का नाश कर डालती है। उसके पुत्र और पत्नी उसके प्रति नाना प्रकार की आशा लगाये रहते हैं। सियार नित्य प्रतीक्षा करते रहते हैं कि वह कब मरेगा, कब हमें अच्छा खाद्य मिलेगा। कौए और गिद्ध भी उसके मरण की बाट जोहते रहते हैं, शूकर और कुत्ते भी उसके शव की प्रतीक्षा किया करते हैं।

अकथ कहानी[१३२] प्रेम की, कछु कही न जाई। गूँगे केरि सरकरा, बैठे—बैठे मुसुकाई।टेक।। भूमि[१३३] बिना अरु बीज बिन, तरवर एक भाई। अनँत फल प्रकासिया, गुर दीया बताई।। मन थिर बैसि बिचारिया, रामहि लौ[१३४] लाई। झूठी अनभै बिस्तरी, सब थोथी बाई।। कहै कबीर सकति कछु नाँही, गुरु भया सहाई। आँवन[१३५] जाँनी मिटि गई, मन मनहि समाई।।१।। अर्थात् प्रेम का मर्म अवर्णनीय है। इसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। जैसे गूँगा पुरुष शक्कर का स्वाद तो जानता है, किन्तु वह उसका वर्णन नहीं कर सकता, उसी प्रकार प्रेमानुभूति का वर्णन नहीं किया जा सकता।

प्रेम रूपी फल ऐसे वृक्ष में लगता है जो बिना भूमि और बीज के उत्पन्न होता है। इस वृक्ष में अनंत फल लगते हैं। सद्गुरु ने इसके मर्म को बता दिया है। इस फल की प्राप्ति मन को स्थिर करके विचारपूर्वक ध्यान लगाने से होती है। अन्य सभी अनुभव गंदी वायु के समान है जो शरीर को विकारग्रस्त कर देते हैं। कबीर कहते हैं कि गुरु की सहायता से ही इस फल की प्राप्ति हो सकती अन्यथा मेरे में कोई ऐसी शक्ति नहीं है कि मैं इसे प्राप्त कर सकूँ। उसके अनुभव से आवागमन मिट जाता है और व्यष्टि मन समष्टि मन में समाविष्ट हो जाता है।

दुलहिनीं गावहु मंगलचार। हम घरि आए[१३६] राजा राम भरतार।। तन रत करि मैं मन रति[१३७] करिहौ पांचउ तत्त[१३८] बराती। रांम देव मोरै पाहुनै आए मैं जोबन मैंमाती।। सरीर सरोवर बेदी करिहौं[१३९] ब्रह्मा बेद उचारा[१४०]। रांम देव संगि भांवरि लेइहौं[१४१] धंनि धंनि भाग हमारा[१४२]।। सुर तैंतीसों कोटिक[१४३] आए मुनिवर[१४४] सहस अठासी[१४५]। कहै कबीर हंम ब्याहि चले हैं पुरिख एक अबिनांसी।।१४९।। अर्थात् वह कहते हैं कि हे सौभाग्यवती बहुओ! तुम विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले मंगल गीत गाओं। मेरे घर राजा राम पति रूप में पधारे हैं। उनके साथ पाँचो तत्व भी सजधज कर बराती के रूप में आए हैं। मेरा तन और

मन दोनों उनमें रत हैं, लवलीन हैं, प्रेम से अर्पित हैं। मैं अपने यौवन में मदमत्त हूँ अर्थात् मेरी साधना की पक्वावस्था पहुँच गई है और प्रभु से मिलने का क्षण आ गया है। अत: प्रभु आज मेरे यहाँ मेरा वरण करने के लिए पति के रूप में पधारे हैं। मैं उनके स्वागत के लिए शरीर रूपी सरोवर के तट पर वेदी बनाऊँगी और ब्रह्मा पुरोहित के रूप में वेद का उच्चारण करेंगे। यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैं प्रभु राम के साथ भाँवर लूँगी। तैतीस कोटि देवता और अट्ठासी हजार ऋषि इस अद्भुत सम्बंध को देखने के लिए आए हैं। मुझे एक अविनाशी पुरुष व्याह कर ले जा रहे हैं।

पिया मोरा मिलिया सत्त गियांनी। सब मैं व्यापक सबकी जांनै ऐसा अन्तरजामी। सहज सिंगार प्रेम का चोला सुरति निरति भरि आनी। सील संतोख पहिरि दोइ कंगन होइ रही मगन दीवांनी। कुमति जराइ करौं मैं काजर पढ़ी प्रेम रस बांनी। ऐसा पिय हमं कबहु न देखा सूरति देखि लुभांनी। कहै कबीर मिला गुर पूरा तन की तपनि बुझांनी।।१७६।। अर्थात् उपनिषदों में कहा गया है कि ब्रह्म 'सत्यं ज्ञानं अनन्तं'' है। कबीर ब्रह्म वाचक इन्हीं तीनो शब्दों का अपने ढ़ंग से प्रयोग करते हुए कहते हैं कि मेरा प्रियतम मुझे मिल गया, जो कि सत्य है, ज्ञान रूप है और सबमें व्याप्त है। वह ऐसा अन्तर्यामी है कि सबके भीतर विद्यमान रहते हुए, सभी की शुभ–अशुभ वासनाओं और कर्मों को जानता रहता है।

अपने प्रियतम से मिलने के लिए मैंने सहज श्रृंगार किया है। मैंने प्रेमपूर्ण ध्यान और लवलीनता के सुंदर वस्त्र से अपने को सुसज्जित किया है, हाथों में शील और संताष के दो कंगन धारण कर मैं प्रेम में उन्मत हो रही हूँ। मैं कुमति को जलाकर उसके काजल से अपने नेत्रों को सजाऊँगी। मैंने प्रियतम को रिझाने के लिए प्रेम रस से परिपूर्ण वाणी भी सीख ली है। मेरा प्रिय अनुपम है। उसके प्रथम दर्शन मात्र से मैं उसकी ओर आकृष्ट हो गई है। कबीर कहते हैं कि मुझे वह रहस्य ज्ञात हो गया जिससे मैं प्रियतम को प्राप्त कर अपने त्रिताप को बुझाने में सफल हो गई हूँ।

बालम आउ[१४६] हमारै गेह रे। तुम्ह बिन दुखिया देह रे।टे।। सब कोई[१४७] कहै तुम्हारी नारी मोकौं यह[१४८] अन्देह रे। एकमेक ह्वै सेज न सोवै तब लगि[१४९] कैसा नेह रे।। अन्न[१५०] न भावै नींद न आवै ग्रिह बन धरै न धीर रे। ज्यौं[१५१] कामीं कौ कांमिनि[१५२] प्यारी ज्यौं[१५३] प्यासे कौ नीर रे।। है कोई ऐसा पर उपगारी हरि सौं[१५४] कहै सुनाइ रे। अब[१५५] तौ बेहाल कबीर भए हैं बिनु देखें जिउ[१५६] जाइ रे।। १८९।। अर्थात् कबीर कहते हैं कि हे प्रियतम! तुम मेरे घर आओ। तुम्हारे बिना मैं अत्यंत दु:खी हूँ। सभी लोग मुझे तुम्हारी पत्नी कहते हैं, किन्तु मुझे तो इस पर शंका हो रही है। क्या मैं सचमुच तुम्हारी पत्नी हूँ? पति–पत्नी के सच्चे प्रेम का प्रमाण यही है कि दोनों एक शय्या पर मिलकर सोवें। परन्तु मैं तो तुमसे वियुक्त हूँ। तुम्हारे वियोग में मुझे न भोजन अच्छा लगता है और न रात में नींद ही आती है। मुझे न घर में शांति मिलती है और न बन में अर्थात् बाहर। जैसे कामी पुरुष का चित्त सदा कामिनी में लगा रहता है। क्या जगत् में कोई ऐसा परोपकारी जीव है जो मेरी व्यथा प्रियतम प्रभु से जाकर सुनावे। हे प्रियतम! तुम्हारे बिना कबीर बहुत बेचैन है। तुम्हारे दर्शन के बिना प्राण व्याकुल हो रहे हैं।

बिरहिनी फिरै नाथ[१५७] अधीरा। उपजि बिनाँ कछु समुझि न परई, बाँझ न जानै पीरा।टेक।। या बड़ बिथा सोई भल जाँजै, राँम बिरह सर मारी। कै[१५८] सो जाँनै जिनि यहु लाई, कै जिनि चोट सहारी।। सँग की बिछुरी मिलन न पावै, सोच करै अरू का[१५९] है। जतन करै अरु जुगति बिचारै, रटै राँम कूँ चाहै।। दीन भई बूझै सखियन कौं, कोई मोहि राम मिलावै। दास कबीर मीन ज्यूँ तलपै, मिलैं भलैं सचु पावै।।१९४।। अर्थात् कबीर कहते हैं कि हे नाथ! जीवात्मा रूपी विरहिणी अधीर होकर मारी–मारी फिरती है। जिसने विरह वेदना का अनुभव नहीं किया है, वह इस पीड़ा को समझ नहीं पाता। वंध्या स्त्री प्रसव–वेदना को कैसे समझ सकती है? इस तीव्र पीड़ा का अनुभव वहीं कर सकता है, जो राम के विरह–बाण से आहत है। इस पीड़ा को या तो वह जानता है जिसने इसे उत्पन्न किया है अथवा वह जानता है जो विरह की चोट सहता है। प्रियतम परमात्मा के साहचर्य से वियुक्त जीवात्मा –रूपी विरहिणी संयोग के अभाव में शोकग्रस्त रहती है। वह बेचारी और कर ही क्या सकती है? वह प्रियतम से मिलने की युक्ति पर विचार करती रहती है तथा उनके अनुराग में लीन निरन्तर उनका नाम जपती रहती है। वियोग में क्षीण होकर वह जीवात्मा अपनी सखियों (साधकों) से निवेदन करती है कि उनमें कोई सखी (साधक) ऐसी है जो उसे प्रियतम से मिला दे। कबीर कहते हैं कि वह विरहिणी जल से वियुक्त मछली के समान तड़पती रहती है। प्रभु–मिलन से ही उसे सच्चा सुख प्राप्त हो सकता है।

भूली मालिनी है[१६०] एउ। सतिगुरू जागता है देउ।टेक।। पाती[१६१] तोरै मालिनी पाती पाती जीउ। जिसु[१६२] मूरति कौं पाती तोरै सो मूरति निरजीउ[१६३]।। टांचनहारै टांचिया दै छाती ऊपरि पाउ। जे तूँ मूरति सांचि[१६४] है तै तो गढ़नहारै खाउ[१६५]।। लाडू लावन लापसी

पूजा चढ़ै आपार। पूजि पुजारा लै गया दै मूरति कै महिं छार।। पाती ब्रह्मां पुहुप[१६६] बिसनूँ मूल[१६७] फल महादेव। तीन[१६८] देव प्रतखि तोरहि करहि किसकी सेव।। मालिनि[१६९] भूली जग भुलांनां हम भुलाने नाहिं। कहै कबीर हम रांम राखे क्रिया कांर हरि राइ।। २११।। अर्थात् पुजारिन पूजा के लिए फूल–पत्ती तोड़ती है। यह उसका भ्रम है। केवल सद्गुरु देव जागरूक हैं, उस भ्रम से बचे हुए हैं।

पुजारिन पूजा के लिए फूल–पत्ती तोड़ती है। उसे यह ज्ञान नहीं है कि इसमें भी जीव है। वह जिस मूर्ति के लिए पत्ती तोड़ती है, वह सर्वथा निर्जीव है। इस प्रकार यह निर्जीव पर सजीव चढ़ाती है, मूर्ति को बनाने वाला पत्थर के ऊपर पैर रखकर मूर्ति का निर्माण करता है। यदि मूर्ति से सचमुच शक्ति है तो पहले अपने गढ़ने वाले को क्यों नहीं नष्ट कर देती? तथाकथित भक्त लोग मूर्ति के ऊपर नाना प्रकार के मधुर व्यंजन–लड्डू, नमकीन, लस्सी आदि–का प्रचुर भोग लगाते हैं। पुजारी पूजा में व्यजंन चढ़ाने का दिखावा करके सारा पुजापा लेकर चलता बनता है और मूर्ति के पल्ले कुछ नहीं पड़ता।

हिन्दू ईश्वर को त्रिदेव–ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में मानते हैं। ये तीनों देव पत्र, पुष्प और फल–मूल में विद्यमान हैं। ब्रह्मा पत्ती में, विष्णु पुष्प में और शिव मूल–फल में निवास करते हैं। हे पुजारिन! तू इन तीनों प्रत्यक्ष देवों को तो तोड़ती है। फिर पूजा किस देव की करती है?

कबीर कहते हैं कि यह सारा वाह्याचार केवल भ्रम है। सारा संसार इसी भ्रम में भूला हुआ है। हम इस भ्रम के चक्कर में नहीं पड़े। हमारे ऊपर प्रभु ने कृपा की और उन्हीं के अनुग्रह से हम सुरक्षित हैं।

राम भगति अनियाले तीर।[१७०] जेहि[१७१] लागै सो जानँ पीर।।टेक।। तनु महिं[१७२] खोजौं चोट न पावौं[१७३], ओषद मूर[१७४] कहाँ घसि लावौं[१७५]। एक[१७६] भाई दीसैं सब नारी, नां पाँनौं को पियहिं पियारी। कहै कबीर जाकै[१७७] मस्तकि भाग, सभ[१७८] परिहरि ताकौं मिलै सुहाग।।२६२।। अर्थात् राम के प्रति प्रेमाभक्ति नुकीले तीर के समान है। यह प्रेम–बाण जिसके हृदय में लग गया है, वही उसकी पीड़ा को समझ सकता है। प्रेम–बाण सामान्य बाण से विलक्षण होता है। सामान्य बाण की चोट शरीर पर दिखाई पड़ती है। अतएव उसका औषध द्वारा उपचार किया जा सकता है। किन्तु प्रेम–बाण का घाव सारे शरीर में खोजने पर भी दिखलाई नहीं पड़ता। इसलिए इसका उपचार भी किया जाय तो कैसे? जड़ी–बूटी घिसकर लगाई जाय तो कहाँ? इसकी व्यथा तो आन्तरिक होती है।

परमात्मा रूपी प्रियतम के लिए सभी जीव रूपी नारियाँ एक समान हैं। पता नहीं प्रभु किसका वरण करेंगे? कबीर कहते हैं कि जिसका भाग्य जगा है, अन्य सभी जीवों को छोड़कर उसे ही प्रभु का सोहाग प्राप्त होगा।

हरि मोरा पिउ मैं हरि की बहुरिया। रांम बड़े मैं तक लहुरिया।।टेक।। किएउं सिंगारु मिलन के ताई, हरि न मिले जग जीवन गुसाई। धनि पिउ एक संगि बसेरा, सेज एक पै मिलन दुहेरा। धन्नि सुहागिनि जो पिय भावे, कह कबीर फिरि जनमि न आवै।।३३९।। अर्थात् प्रभु मेरे प्रियतम है और मैं उनकी विवाहिता वधू हूँ। मेरे पति बड़े हैं और मैं उनसे थोड़ी छोटी हूँ। मैंने अपने प्रियतम से मिलने के लिए पूर्ण श्रृंगार किया। किन्तु सारे संसार के जीवन के स्वामी अपने प्रियतम से मिलन न हो सका। आश्चर्य तो यह है कि पति–पत्नी का वास एक साथ ही है, एक सेज पर है, फिर भी दोनों का मिलन नहीं हो पाता है। कबीर कहते हैं कि वह सौभाग्यवती धन्य है, जो प्रियतम की चहेती है। उसका पुनः जन्म नहीं होता।

कामी नर को अंग/ कामिनि काली नागिनी[१७९], तीनो[१८०] लोक मँझारि[१८१]। राँम[१८२] सनेही ऊबरे, विषयों[१८३] खाये झारि।।१।। अर्थात् कामिनी तीनों लोकों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग) में काली नागिनी के समान है। उसने विषयासक्त लोगों को पूर्ण रूप से खा डाला है अर्थात् नष्ट कर दिया है। केवल राम के भक्त ही बच सके।

कामिनि[१८४] मीनीं[१८५] खाँड़[१८६] की, जे छेड़ौ[१८७] तौ खाइ। जे[१८८] हरि चरणौ[१८९] राचिया, तिनके निकट[१९०] न जाइ।।२।। अर्थात् कामिनी शहद की मधुमक्खी के समान है। जिस प्रकार मुधमक्खी को थोड़ा भी छेड़ा जाय तो वह कष्ट देती है, वैसे ही कामिनी के प्रति यदि थोड़ा भी अनुराग दिखाया जाय तो वह फँसाकर नष्ट कर देती है। किन्तु जो लोग भगवान के चरणों में अनुरक्त हैं, वह उनके पास नहीं फटकती। भाव यह है कि यदि कोई कामवश स्त्री के प्रति आकृष्ट होता है और उसके आकर्षण को यदि वह जान लेती है तो वह उसे अपने वश में करके सर्वथा विनष्ट कर देती है, परन्तु जो भगवान के भक्त हैं उनके हृदय में काम का संचार नहीं होता था या काम की प्रबलता नहीं रह जाती। चित्त तो एक ही है, उसे चाहे काम में लगा दो, चाहे राम में।

परनारी राता फिरैं[१९१], चोरी बिढ़ता खाँहि[१९२]। दिवस चारि सरसा रहै, अंति समूला जांहि[१९३]।।३।। अर्थात् जो पराई स्त्री में अनुरक्त रहते हैं अथवा जो चोरी की कमाई से अपना निर्वाह करते हैं, वे दोनों चार दिनों अर्थात् अल्पकाल के लिए भले ही फले–फूलें किन्तु अन्त में समूल नष्ट हो जाते हैं।

परनारी पर सुन्दरी, बिरला बंचै कोइ। खाताँ मीठी खांड सी, अन्तकालि विष होइ।।४।। अर्थात् दूसरे की स्त्री अथवा दूसरे की सुन्दर बेटी या बहू के आकर्षण से कोई बिरले ही बचते हैं। वह ऐसी खाँड़ के समान है, जो खाते या भोगते समय मधुर प्रतीत होती है, किन्तु अंतकाल में विषवत् सिद्ध होती है।

परनारी[१९४] कै राचनैं[१९५], औगुन है गुन नाँहिं[१९६]। खार समुंद मैं माछली[१९७], केती[१९८] बहि बहि जाँहि।।५।। अर्थात् पराई स्त्री में अनुरक्त होने से सब दोष–ही–दोष हैं, अच्छाई कोई नहीं। जिस प्रकार न जाने कितनी मछलियाँ नदियों के प्रवाह में बहकर समुद्र के खारे जल में पहुँच जाती हैं, वैसे ही न जाने कितने लोग परनारी के मोह में पड़कर दु:खपूर्ण भवसागर में निमग्न हो जाते हैं।

परनारी कौं राचनौं[१९९], जस लहसुन की खानि[२००]। कोने बैठे खाइए[२०१], परगट होई निदानि[२०२]।।६।। अर्थात् पराई स्त्री के साथ भोग लहसुन के खाने के समान है। जैसे लहसुन को कितने ही कोने या एकान्त स्थान में बैठकर खाया जाए, किन्तु फिर भी उसकी गन्ध प्रकट हो जाती है, वैसे ही पराई स्त्री से कितना ही छिपकर भोग–विलास करें, अन्त में उसकी जानकारी हो ही जाती है।

नर नारी सब नरक है[२०३], जब लग[२०४] देह सकाम। कहैं कबीर ते राँम के[२०५], जे सुमिरैं निहकाम[२०६]।।७।। अर्थात् जब तक देह में कामयुक्त तादात्म्य बना रहता है, तब तक चाहे नर हो या नारी, वह काम उसे नरक की ओर ले जाता है। अध्यात्म से विमुख होना और काम में रत होना ही नरक की ओर जाना है। जो निष्काम भाव से प्रभु का स्मरण करते है, वे प्रभु के द्वारा स्वीकृत हो जाते हैं या अपना लिये जाते हैं। इसमें एक व्यंजना यह है कि जब तक व्यक्ति सकाम है, तब वह सुमिरन करने पर भी प्रभु द्वारा अपनाया नहीं जा सकता।

सोरठा– नारी सेती नेह, बुधि विवेक सबही हरै। काँइ[२०७] गँवावै[२०८] देह, कारज[२०९] कोई ना सरै।।८।। अर्थात् नारी में अनुराग, बुद्धि और विवेक दोनों को हर लेता है। लोग व्यर्थ में इस अनुराग में अपने शरीर को क्यों नष्ट करते हैं, जबकि उससे कोई काम सिद्ध नहीं होता। इसमें सब हानि–ही–हानि है, लाभ कुछ भी नहीं।

नाना भोजन स्वाद सुख, नारी सेती रंग। बेगि छाँड़ि पछतायगा[२१०], ह्वैहै मूरति भंग[२११]।।९।। अर्थात् मानव में जितनी सहज प्रवृत्तियाँ हैं, उनमें दो मुख्य हैं– आहार सहज प्रवृत्ति और काम सहज प्रवृत्ति पहली प्राण–संरक्षण के लिए है और दूसरी संतान–संरक्षण के लिए। प्रकृति ने इन दोनों प्रवृत्तियों को इन्हीं दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दिया है। जब इन उद्देश्यों को छोड़कर मानव आहार को स्वाद के लिए और नारी को रति के लिए ग्रहण करने लगता है, तब उसका विनाश होता है। इसी तथ्य को लक्ष्य करके कबीर ने इस साखी में कहा है कि यदि कोई नाना प्रकार के भोजन स्वाद–सुख लिए खाता है और नारी का रंग अर्थात् रति के लिए उपयोग करता है, तो उसका विनाश अवश्यभावी है। कबीर कहते हैं कि ऐसे प्रेम को छोड़ दो, अन्यथा बाद में पछताओगे और तुम्हारा शरीर नष्ट हो जायेगा, तुम्हारा जीवन विनष्ट हो जायेगा।

नारि नसावै तीनि गुन[२१२], जेहि[२१३] नर पासँ होइ। भगति मुकति निज ग्यान मैं[२१४], पैठि न सकई कोई[२१५]।।१०।। अर्थात् जो पुरुष नारी के संसर्ग में लिप्त रहता है, उसके तीन गुण – भक्ति, मुक्ति, और ज्ञान नष्ट हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति न तो भक्ति में प्रविष्ट हो सकता है, न मुक्ति में और न ज्ञान में।

एक कनक अरु कामिनीं[२१६], विष फल किया उपाय[२१७]। देखत[२१८] ही ते विष[२१९] चढ़ै, चाखत ही मरि जाय[२२०]।।११।। अर्थात् कनक (सोना और धतूरा) तथा कामिनी ये दोनों विष–फल के समान उत्पन्न किये गये हैं। इनके दर्शन मात्र से विष चढ़ जाता है अर्थात् मोह का नाश छा जाता है और इनका स्वाद लेने से तो मनुष्य का विनाश ही हो जाता है।

एक कनक अरु कामिनीं[२२१], दोइ अगिन[२२२] की झाल। देखे[२२३] ही तैं[२२४] परजरै, परसां[२२५] ह्वै पैमाल।।१२।। अर्थात् स्त्री और स्वर्ण दोनों आग की लपट के सामन हैं जिनके देखने ही से शरीर प्रज्वलित हो उठता है अर्थात् आकर्षण की उष्णता जाग उठती है और स्पर्श करने से तो मनुष्य विनष्ट हो जाता है।

कबीर[२२६] भग की प्रीतड़ी[२२७], केते गए गडंत। केते औरौ जाँहिगे[२२८], नरक[२२९] हसंत हसंत।।१३।। अर्थात् 'हसंत हसंत' में विचित्र व्यञ्जना है। मनुष्य समझता है कि वह सुख भोग रहा है, आनंद उठा रहा है, किन्तु वह जा रहा है नरक की ओर। 'हसंत हसंत' सुख–बोध का प्रतीक है।

जोरू जूठनि[२३०] जगत की, भले बुरे का[२३१] बीच। उत्तिम[२३२] ते अलगे रहैं, निकटि रहैं ते नीच[२३३]।।१४।। अर्थात् स्त्री जगत् की जूठन के समान है। उसी के द्वारा भले–बुरे का अंतर ज्ञात होता है। जैसे लोग जूठन से दूर रहते हैं, परन्तु नीच जूठन को ही अपनाते हैं, वैसे ही उत्तम लोग स्त्री के संसर्ग से दूर रहते हैं और जो नीच हैं वे उसके संसर्ग को ही जीवन का लक्ष्य समझते हैं।

नारी कुंड नरक का[२३४], बिरला थाँभै[२३५] बाग[२३६]। कोइ[२३७] साधू जन ऊबरै[२३८], सब जग मूवा लाग[२३९]।।१५।। अर्थात् नारी नरक का कुण्ड है। कोई विरला व्यक्ति ही उस ओर जाने से नियन्त्रण रूपी लगाम लगा पाता है अर्थात् इन्द्रियों पर नियन्त्रण कर पाता है। विरले संयमी पुरूष ही उससे बच पाते हैं, अन्यथा अधिकांश लोग उससे पीछे लगकर विनाश को प्राप्त होते हैं।

सुन्दरि तैं[२४०] सूली भली, बिरला बंचै[२४१] कोई। लोह[२४२] लिहाला अगनि[२४३] मैं, जरि बरि[२४४] कोइला होइ।।१६।। अर्थात् सुन्दरी से शूली अच्छी है। शूली पर चढ़ा हुआ व्यक्ति शायद बच भी जाय, किन्तु नारी में आसक्त पुरुष विनष्ट होने से बच नहीं सकता। जैसे आग में डाला हुआ अत्यन्त पुष्ट लोहा भी जलकर खाक हो जाता है, वैसे ही शक्ति–सम्पन्न पुरुष भी नारी के चंगुल में फँसकर विनाश को प्राप्त होता है।

अंधा नर चेतै नहीं, कटै न संसै सूल। और गुनह हरि बकसिहैं[२४५], काँमी डाल न मूल।।१७।। अर्थात् अज्ञानांश मनुष्य श्रेय को नहीं जान पाता। इसलिए उसके संशय का शूल समाप्त नहीं होता। जब तक अज्ञान है, तब तक प्रभु के विषय में, परम श्रेय के विषय में उसको संशय बना रहता है। वह जो कुछ इन्द्रियों से अनुभव करता है, उसी को सत्य मान लेता है। परमात्मा, मोक्ष आदि के विषय में उसे संदेह बना रहता है। प्रभु एक बार चाहे अन्य अपराधों को क्षमा भी कर दे, किन्तु कामी को वह डाल और मूल सहित अर्थात् सम्पूर्ण रूप से नष्ट कर देते हैं।

भगति बिगाड़ो काँमियाँ[२४६], इन्द्री केरे स्वादि। हीरा खोया हाथ तैं[२४७], जनम गँवाया[२४८] बादि।।१८।। अर्थात् कामीजनों ने इन्द्रियों के स्वाद के वशीभूत होकर भक्ति को विकृत कर रखा है। वे भक्ति की ओट में लोगों पर प्रभाव जमाकर भोग–विलास का साधन एकत्र करते हैं। उन्होंने अपना जन्म तो नष्ट किया ही, यह लोक तो बिगाड़ा ही, हीरा के समान प्रकाशमान और स्वच्छ आत्मतत्व को भी खो दिया।

कामी अमीं[२४९] न भावाई, बिख ही[२५०] कौं ले सोधि। कुबुधि न जाई[२५१] जीव की, भावै स्वयं प्रमोधि[२५२]।।१९।। अर्थात् कामी पुरुष को भक्ति रूपी अमृत अच्छा नहीं लगता। वह विषय–विष को ही खोजकर ग्रहण करता है। लोग अमृत की खोज में रहते हैं, वह विष को ही अमृत समझता है। बेचारे जीव की दुर्बुद्धि नहीं जाती, चाहे स्वयं प्रभु ही अथवा शिव हो उसे क्यों न उपदेश दें।

विषै विलंबी आत्माँ, ताका मजकण[२५३] खाया सोधि। ग्याँन अंकूर न ऊगई, भावै निज परमोध[२५४]।।२०।। अर्थात् जो जीवात्मा विषयों में रमा रहता है, उसकी वही दशा होती है जो उस अन्नकण की होती है जिसके सार भाग को घुन खा गए है। जैसे उस अन्न को बोने से अंकुर नहीं निकलता, उसी प्रकार उस अन्त:करण में ज्ञान का अंकुर नहीं उग सकता जिसको विषय–वासना रूपी घुन ने चाह डाला है। ऐसे व्यक्ति में ज्ञान कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकता, चाहे उसे स्वयं आत्मतत्व ही क्यों न प्रबुद्ध करे।

काम करम की केंचुली[२५५], पहिरि हुआ नर नाग। सिर फोरै[२५६] सूझै नहीं, कोइ आगिला अभाग[२५७]।।२१।। अर्थात् सर्प जब केंचुली से ढँक जाता है, तब उसे कुछ नहीं दिखलाई पड़ता। वह अंधा हो जाता है। उसी प्रकार जो व्यक्ति काम–प्रेरित कार्य की केंचुल से ढँक जाता है, वह सर्प के समान अंधा हो जाता है अर्थात् उसमें भद्र–अभद्र, पाप–पुण्य, शुभ–अशुभ का विवेक नहीं रह जाता है। चाहे वह लाख सिर पटके, किन्तु प्रबल काम के प्रभाव के कारण उसे सन्मार्ग नहीं सूझता। यह दुर्भाग्यावस्था किसी पूर्वजन्म के पाप का ही परिणाम है।

कामी कदे न हरि भजै, जपै न केसौ जाप। राँम कहे तैं जलि मरै, कोइ पूरबला[२५८] पाप।।२२।। अर्थात् कामी कभी भी प्रभु का भजन नहीं करता और न प्रभु का जाप करता है। वह रामनाम के कहने या सुनने मात्र से जल–भुन उठता है। रामनाम के

जप के प्रभाव से विषय–भोग की लालसा क्षीण होने लगती है। विषयी या कामी विषय भोग को ही अपना जीवन समझता है। उसे यह भय बना रहता है कि राम नाम के जप से विषय–भोग का जीवन नष्ट होने लगेगा। अत: उसके अवचेतन मन में राम –नाम या भगवत् जप के प्रति सहज विरोध की भावना रहती है। उसकी यह प्रवृत्ति किसी पूर्वजन्म के पाप का परिणाम है।

काँमी लज्जा[२५९] ना करै, मन माँही अहलाद[२६०]। नींद न माँगै सांथरा[२६१], भूख[२६२] न माँगै स्वाद।२३।। अर्थात् कामीजन को सामाजिक मर्यादा का ध्यान नहीं रहता। वह विषय–भोगजन्य पूर्वानुभूत आनन्द की स्मृति से प्रेरित होकर काम के वश में हो जाता है। ऐसी अवस्था में उसे उचित–अनुचित का ध्यान नहीं रह जाता है। जैसे निद्रा से आक्रान्त व्यक्ति किसी बिस्तर की अपेक्षा नहीं करता, वह कभीं भी सो जाता है तथा भूखा व्यक्ति स्वादिष्ट भोजन की अपेक्षा नहीं करता, उसे जो भी रूखा–सूखा मिल जाय उसे खा लेता है, वैसे ही कामी व्यक्ति उचित–अनुचित का ध्यान न रखते हुए केवल नारी का संसर्ग और उपभोग चाहता है।

नारि पराई अपनी[२६३], भुगतें[२६४] नरकहिं जाइ। आगि आगि सब[२६५] एक है, देत हाथ जरि जाइ[२६६]।।२४।। अर्थात् काम का सहज भाव मनुष्य की सन्तानोत्पत्ति के लिए मिला है, भोग–तृप्ति के लिए नहीं। यदि वह भोग की लालसा से काम की तृप्ति करता है तो चाहे अपनी नारी हो या पराई, वह नरक में ही जाएगा। आग चाहे अपने घर की हो या पराए घर की, है तो आग ही। उसमें हाथ डालते ही व्यक्ति जल जाता है। उसी प्रकार जब हम भोग–वासना से नारी के प्रति आकृष्ट होते हैं, तब वह चाहे अपनी हो या पराई, हमारा विनाश अवश्यंभावी है।

यदि ना०प्र० का पाठ 'आगि आगि सबरौ कहैं, तामैं हाथ न बाहि' लिया जाय तो अर्थ होगा– आग को सभी आग हो कहते हैं। इसलिए उसमें हाथ न डाल। 'बाहि' का अर्थ है– डालना, ले जाना।

कबीर[२६७] कहत जात हौं[२६८], चेतै[२६९] नहीं गँवार। बैरागी गिरही कहा, काँमी वार न वार ।।२५।। अर्थात् कबीर कहते हैं कि मैं कितनी ही चेतावनी देता हूँ, किन्तु मूर्ख व्यक्ति चेतता नहीं। उसने चाहे संन्यास ले लिया हो अथवा व गृहस्थ हो, यदि वह विषयी हो जाता है, काम में सदा लिप्त रहता है, तो उसका न यहाँ ठिकाना है न वहाँ। उसकी न इस लोक में सद्गति है न परलोक में।

ग्याँनी तो नीडर भया, माँनै नाँही संक। इन्द्री केरे बसि पड़ा[२७०], भूँजै[२७१] बिखै निसंक।।२६।। अर्थात् शास्त्र, पोथी वाचक तथाकथित ज्ञानी तो और भयंकर दु:स्थिति में रहता है। उसे लोकमत का भय नहीं रहता। वह समझता है कि मुझे ज्ञानी समझकर लोग मेरे कर्मों में दोष नहीं निकालेंगे। इसलिए उसे लोकापवाद का भय नहीं रह जाता और वह इन्द्रियों के वश में होकर निश्चिन्त भाव से विषयों का सेवन करता रहता है।

ग्याँनी मूल गँवाइया, आपै[२७२] भये करता। तातैं[२७३] संसारी भला, मन में रहै डरता।।२७।। अर्थात् तथाकथित पंडितमन्य ज्ञानी, जिसको 'सोहं' अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ, का मिथ्याभिमान हो जाता है, वह अपने मूल अर्थात् आत्मस्वरूप से च्युत हो जाता है और उसे विषयजन्य दोषों का ध्यान नहीं रह जाता है। वह विषय–भोग के वशीभूत हो जाता है। उससे तो संसारी पुरुष अच्छा है, क्योंकि वह अपने को कर्त्ता तो नहीं समझता है। उसके मन में लोकमत या ईश्वर का कुछ भय तो बना रहता है।

कबीर[२७४] सुन्दरि यौं कहै, सुनियो[२७५] कंत सुजान[२७६]। बेगि मिलौ तुम आई करि[२७७], नहिंतर तजौं परांन[२७८]।१।। अर्थात् जीवात्मा रूपी सुन्दरी प्रभु–रूपी कंत से कहती है कि हे विज्ञ प्रिय स्वामी! मेरी विनती सुनो। तुम ृीघ्र आकर मुझसे मिलो अन्यथा मैं प्राण त्याग दूँगी।

कबीर[२७९] जे कोई[२८०] सुन्दरी, जांनि[२८१] करै बिभिचार। ताहि न कबहूँ आदरै, परम[२८२] पुरुष भरतार।।२।। अर्थात् यदि कोई सुन्दरी जान–बूझकर व्याभिचार करती है, अन्य पुरूष के सथ रमण करती है, तो उसका स्वामी कभी उसे अपने हृदय में स्थान नहीं दे सकता। ठीक इसी प्रकार यदि जीवात्मा रूपी सुन्दरी प्रभु को छोड़कर माया से लगन लगाती है तो वह पुरुषोत्तम भगवान का सामीप्य नहीं प्राप्त कर सकती।

जे सुंदरि साँई भजै[२८३] तजै आँन की आस। ताहि न कबहूँ परिहरै, पलक न छाँड़े पास।।३।। अर्थात् जो सुन्दरी अपने पति की सेवा में रत रहती है और अन्य पुरुष की इच्छा भी नहीं करती, उसका पति उसे कभी नहीं छोड़ता। वह एक क्षण के लिए भी उससे अलग नहीं होता। ठीक इसी प्रकार जो जीवात्मा अन्य देवी–देवताओं की आशा छोड़कर प्रभु की हृदय से भक्ति करता है, उसको प्रभु अपा मधुर सान्निध्य प्रदान करता है।

इस[२८४] मन कौं मैदा करौ[२८५], नान्हाँ करि करि पीस[२८६]। तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म[२८७] झलक्कै[२८८] सीस।।४।। अर्थात् हे सुन्दरी (जीव)! तू इस स्थूल भौतिक मन को साधना द्वारा इतना सूक्ष्म बना ले, उसके रजस् और तमस् अंश को चूर्ण–विचूर्ण कर सात्त्विक अंश का इतना उद्रेक कर ले कि तेरे मानस में प्रभु की ज्योति झलकने लग जाय। हे सुन्दरी! तू तभी वास्तविक सुख को प्राप्त कर सकती है।

'सुन्दरी' के साथ 'ब्रह्म झलक्कै सीस' में 'सीस' की व्यञ्जना यह है कि तभी तेरा सौभाग्य चमकेगा।

दरिया पार हिंडोलना, मेल्या[२८९] कंत मवाइ। सोई नारि सुलक्षणीं, नित प्रति झूलन[२९०] जाइ।।५।। अर्थात् इस साखी के प्रथम चरण का अन्वय इस प्रकार है– 'कंत दरिया पार हिंडोलना मचाइ मेल्या।' तात्पर्य यह है कि इस संसार–सागर में ज्ञान प्राप्त करने की स्थूल साधन–इन्द्रियों से परे प्रभु रूपी पति ने मिलन का झूला सजाकर डाल रखा है। वही स्त्री शुभ लक्षणों –वाली है जो इस हिंडोले में नित्यप्रति अपने प्रिय के साथ झूलती है।

भाव यह है कि इन्द्रिय, तर्क अथवा बुद्धि से मानव इस भव–सागर को पार नहीं कर सकता। इनसे परे सहज ज्ञान है, वही प्रिय के मिलन का माध्यम है।

शब्दार्थ

[१]बा,ब०,ख०, बलि०एक;

[२]बा०जोति, ब०–जोती, ख०–ज्योति;

[३]बलि०–प्रकाशा;

[४]बा० गाइत्री;

[५]ब०तिहि नारि, ख० तिहि नारी;

[६]बा०–तीनि;

[७]बा०मऊ, ब०, स०–भाऊ;

[८]बा० बिष्नु;

[९]बा०–महेसुर नाऊँ, ख०–महेश्वर नाऊ;

[१०]बा०–फिरि;

[११]बा,ब०,ख०–के;

[१२]बा०–केपरि, ब०–तुं केकर, ख०–केकर तुम;

[१३]बा,ब०, ख०–हम तुम तुम हम;

[१४]बा०,ब०, ख०–तुमहि;

[१५]बा०–हमही तोर;

[१६]अन्य प्रतियों में 'औ' नहीं है;

[१७]बा०,ब०, ख०–देखा;

[१८]ब०,ख०मैं 'जो' नहीं है;

[१९]बा०–बापहि।

[२०]बं०–ज्योति;

[२१]बं०,ब०, ख०–शब्द, बलि० शब्द से प्रगट पुरूष एक नारी;

[२२]ख०–तिरीये;

[२३]ब०,ख०–जानल, बंन्जानै;

[२४]बं०, ब०, ख०–आदिउ (चौथी पंक्ति इस प्रकार है– ते तिरिया भग लिंग अनंता, कोई न जाने आदि और अंता।);

[२५]बं०–बाखरी (बलि० वाली प्रति की तीसरी रमैनी की दूसरी पंक्ति इस प्रकार है– बाखरि एक विधाते कीन्हा, चौदह ठहर पाट सो लीन्हा।)

[२६]ब०, ख०–विधाते

[२७]बं०—पाटि, ब०, ख०—पाठ;

[२८]बं०ब्रह्म महंतौ (बलि० वाली प्रति में यह पंक्ति नहीं है।)

[२९]बं०—ते,ब०—तिन;

[३०]ब०,ख०—तीन

[३१]बं०—ते पुनि रचिनि (बलि० वाली प्रति मैं तीसरी रमैनी की तीसरी पंक्ति— 'तिन पुनि रचल पंथ अण्ड बण्डा।' इसके बाद तीसरी रमैनी में ही शेष रमैनी है।)

[३२]बा०खण्ड;

[३३]बं०—छा दर्शन ब०, ख०—छौ दर्शन

[३४]ब०, ब० पेटहि;

[३५]बं०,ब०,ख०—काहु न

[३६]ब०, ख०—सुनत;

[३७]ब०, ख०, बलि० धरे बहुते;

[३८]बं—प्राण बियापल;

[३९]बा०—एकहिं जननी;

[४०]ब०, ख०, बलि०—भग भोगी के;

[४१]अन्य प्रतियों में—जो;

[४२]बा०ले—ऊ, ब०,ख०—बैली;

[४३]बलि०—सत्यनाम;

[४४]ब०,ख०—'भव' नहीं है।

[४५]छ. वोनई, बलि०—ओनई;

[४६]बं०—परिगै;

[४७]बं०—सांझा;

[४८]बं०— मांझा;

[४९]छ. धनी, बं० धन;

[५०]अन्य प्रतियों में— अन्ते:

[५१]छ० चौपारी कामरी;

[५२]छ. ले सके।

[५३]बा०याहि में, बं०, बलि०—यहीं में;

[५४]बं, बा०—घर;

[५५]छ०—होता जान, बा०—होत अजान, बं०—होत ज्ञान, ब०, ख०—हता जान;

[५६]छ०—औ;

[५७]छ०—अनंत;

[५८]छ०—अनंत

[५९]छ. सेवा;

[६०]छ०—मानै नहिं मनमँह हारि;

[६१]बं०—बीर बचे नहीं;

[६२]बा०—बाँचहि;

[६३]बा०—बिचारि।

[६४]छ०—आये;

[६५]छ०—कलाला;

[६६]ख०—कुम्हाला, बलि०—कृपाला;

[६७]ख०, बलि०—विधि ने;

[६८]ब०स०, बलि०—कनाऊँ;
[६९]बा०—से;
[७०]अन्य प्रतियों में—के;
[७१]छ०—का पुनी, ख०—की ध्वनी;
[७२]ब०, ख०—शुधा;
[७३]छ०, ब०, ख०—झूठी, बलि०—झूठे;
[७४]बा०—सूत्रधार।
[७५]ब०,ख०, बलि०—सत्य सत्य;
[७६]बा०—राखिनि जाई;
[७७]बा०—खीलि, ब०, ख०—खिला;
[७८]ब०, ख०—सो कर्त्ता;
[७९]छ०—रचिन्हि, ब०, ख०—रची;
[८०]बलि०—भये बरण जग चारी;
[८१]छ०. रजगुन तमगुन;
[८२]छ०, ब०—धरती, बलि—धरणि;
[८३]बा०—सब नारि राम की।
[८४]ब०, ख, शु०—मोरं;
[८५]बा०—बंसहि;
[८६]बा०—भूला नल;
[८७]बा०—हस्ती के;
[८८]बा०—रहई:
[८९]बा० लोहहिं लोह काटि जु सयाना;
[९०]ब०, ख०—काटि जस आना;
[९१]बलि०, शु०, वि०, बना० पहिचाना।
[९२]बा०—ते बिरले।
[९३]बा०—कासी के;
[९४]ब०, ख०—छूटे;
[९५]अन्य प्रतियों में 'सभ' नहीं है।
[९६]बा—ऐसी, शु०, बलि०—अस;
[९७]बा०—गये सहदेव;
[९८]वि० सरब।
[९९]बा०—कुरिया;
[१००]शु०—देखि;
[१०१]अन्य प्रतियों में— इन;
[१०२]वि—विभव टका दस
[१०३]बा०—गये रावन।
[१०४]बा०—नारीद्ध
[१०५]बा०—बापहिं।
[१०६]
[१०७]बा०—भभरि;
[१०८]शु०, बलि०—लौ उनकी;

[१०९]बं०, शु०— एक;
[११०]बा०—अचरज एक देखहु हो संतो।
[१११]ख०—सवरी;
[११२]ख०, बलि०—धरणि;
[११३]ब०, ख०, बलि०—दीप, वि०—ज्योति;
[११४]ब०, बहि०, शु०, ख०—खसमहि;
[११५]बा०—रस।
[११६]बा०—कथो;
[११७]अन्य प्रतियो में—निरूप;
[११८]बलि० प्यास;
[११९]बा०—अपरमपार रूप मगु, ग्यान रूप यहु आहि, बलि०, सत्य नाम अति दुर्लभ, औरो ते नहिं काम;
[१२०]बं०—नहिं त्यहि संख्या आहि;
[१२१]बा०—कहैं कबीर पुकारिकै, अद्बुद कहिए ताहि।
[१२२]अन्य प्रतियों में— चुकेहु अपराधी;
[१२३]बं०—हमरो बाला;
[१२४]ब०ख०—अहई;
[१२५]ब०, ख०—चहई;
[१२६]बलि०—नाती पुत्र;
[१२७]बा—जमु की नाई
[१२८]ब०स०—सोन करहु, बं०—सो न कहै;
[१२९]शु०, ब०, ख०—तेहि;
[१३०]बलि०—बैरी;
[१३१]बं०, शु०—स्वरूप,
[१३२]ना०प्र०—कहाँणी
[१३३]ना०प्र०—भोमि
[१३४]ना०प्र०—ल्यौ
[१३५]ना०प्र०—आँवण जाँणी।
[१३६]ना०प्र०—आए हो।
[१३७]ना०प्र०—रत करिहूँ।
[१३८]ना०प्र०—पंचतत।
[१३९]ना० प्र०— करिहूँ
[१४०]ना०प्र०—उचार।
[१४१]ना०प्र०—लैहूँ।
[१४२]ना०प्र०—हमार।
[१४३]ना०प्र०— तैतीस्ं कौतिग।
[१४४]ना०प्र०—मुनियर।
[१४५]ना०प्र०—अठ्यासी।
[१४६]ना०प्र०—बाल्हा आव।
[१४७]ना०प्र०
[१४८]ना०प्र०—इहै।
[१४९]ना०प्र०—लग।

[१५०]ना०प्र०—आन।
[१५१]ना०प्र०—ज्यूँ
[१५२]ना०प्र०—काम पियारा।
[१५३]ना०प्र०—ज्यूँ।
[१५४]ना०प्र०—सूँ।
[१५५]ना०प्र०—ऐसे हाल।
[१५६]ना०प्र०— जीव।
[१५७]ना०प्र०—नाम।
[१५८]ना०प्र०—कैसो
[१५९]ना०प्र०—काहै।
[१६०]ना०प्र०—हे गोव्यंद जागतौ जगदेव तू करै किसकी सेव।
[१६१]ना०प्र०—भूली मालिनि पाती तोड़ै।
[१६२]ना०प्र०—जा।
[१६३]ना०प्र०—नर जीव।
[१६४]ना०प्र०—सकल।
[१६५]ना०प्र०—कौ खाव।
[१६६]ना०प्र०—पुइपे।
[१६७]ना०प्र०— फूल।
[१६८]ना०प्र०—तीनि देवौं एक मूरति।
[१६९]ना०प्र०—एक न भूला दोइ न भूला, भूला सब संसारा, एक न भूला दास कबीरा, जाकै राम आधारा।
[१७०]ना०प्र०—बान अन्ययाले।
[१७१]ना०प्र०—जाहि।
[१७२]ना०प्र०—मन।
[१७३]ना०प्र०—पाऊँ।
[१७४]ना०प्र०—मूली।
[१७५]ना०प्र०— लाऊँ।
[१७६]ना०प्र०— एक ही रूप
[१७७]ना०प्र०—जा।
[१७८]ना०प्र०—नाँ जानूँ काहु देइ सुहाग।
[१७९]ना०प्र०—काँमणि काली नागणीं।
[१८०]ना०प्र०—तीन्यूँ, ति०—तीनिउं, यु०—तीन।
[१८१]हनु० मझार, यु०—मंझार।
[१८२]हनु—यु०—नाम।
[१८३]ति०—बिखई, यु०—विषिया।
[१८४]ना०प्र०—काँमणि
[१८५]यु०—मीठी खाँड़ सी।
[१८६]ना०प्र०—षाँणि।
[१८७]यु०—छेरे तेहि।
[१८८]यु०—जो।
[१८९]यु०—चरने।
[१९०]ना०प्र०—निकटि।
[१९१]हनु०वि०—यु०—रहै।

[१९२]हनु०,वि०—यु—बैठत खाय।
[१९३]हनु०,वि०—यु०—अन्त समूला जाय।
[१९४]अन्य—नारी केरे राचनें।
[१९५]ना०प्र०—राचणैं।
[१९६]ना०प्र०—औगुण है गुण नाँहि।
[१९७]ना०प्र०—शार समंद मैं मछला, हनु०—वि—खार समुन्दर माछली।
[१९८]ना०प्र०—केता।
[१९९]ना०प्र०—कौं राचणौं अन्य—का राचना।
[२००]ना०प्र०—जिसी ल्हसण की आंनि, अन्य—ज्यों लहसुन की खान।
[२०१]ना०प्र०—शूणैं वैसि रशाइए, यु०—कोने बैठिकै खाइए।
[२०२]ना० प्र०—दिवनि।
[२०३]हनु०—नफर है, यु०—नर कहैं।
[२०४]तिवारी०—लगि।
[२०५]हनु०—ते राम का, यु०—सो राम का।
[२०६]हनु०—यु०—जो सुमिरै निष्काम।
[२०७]हनु०—काह, यु०—बृथा।
[२०८]ना०प्र०—गमावै।
[२०९]ना०प्र०—कारिज।
[२१०]हनु०—पछताहुगे।
[२११]हनु०—मूरति होइहै भंग।
[२१२]ना० प्र०—तीन सुख।
[२१३]ना०प्र०—जा, तिवारी०—जौ, हनु०—वि०—जो।
[२१४]हनु०—भक्ति मुक्ति निज ध्यान में, यु०—भक्ति मुक्ति अरु शान में।
[२१५]हनु०—वि०—पैठिन सकही कोय, यु०—पैठि न सक्कै कोय।
[२१६]ना०प्र०—काँमनी।
[२१७]ना०प्र०—कीएउ पाइ, हनु०—विचार०—लिया उपाय।
[२१८]ना०प्र०—देखै ही थैं विष चढ़ै।
[२१९]तिवारी०—बिख।
[२२०]ना०प्र०—खाँये सू मरि जाइ।
[२२१]ना०प्र०—काँमनी।
[२२२]ना०प्र०—दोऊ अगनि हनु०—यु०—दोऊ अग्नि।
[२२३]हनु०—विचार०—देखत ही ते परजरै।
[२२४]ना०प्र०—तन प्रजलैं।
[२२५]ना०प्र०—परस्यां, हनु०—परसि करै।
[२२६]हनु०, युगला०—कबिरा।
[२२७]यु०—प्रीतरी।
[२२८]ना०प्र०—अजहूँ जायसी।
[२२९]ना०प्र०—नरकि, यु०—नरके।
[२३०]ना०प्र०—जूठणि, हनु०—जूठन
[२३१]यु०—विचार०—के।
[२३२]ना०—प्र० उत्यम, यु०—वि०—उत्तम सो अलगा रहै।
[२३३]ति०—मिलि खेलैं ते नीच, हनु०, यु०—वि०—मिलि खेल सो नीच।

[२३४]हनु०,वि०—यु०कुंडी नरक की।
[२३५]ना०प्र०—थंभै।
[२३६]तिवारी—यु०—बागि।
[२३७]ना०प्र०—कोई।
[२३८]हनु०, यु०—वि०—ऊबरा।
[२३९]ति०—यु०—लागि।
[२४०]ना० प्र०—थैं, हनु०, वि०—यु०—ते।
[२४१]अन्य—बाँचै।
[२४२]हनु०—लाहै अग्नि ज्यौं, यु०—वि०—लुहालै अगिनि मैं।
[२४३]तिवारी०—आगि ज्यूँ।
[२४४]ना०प्र०—जलि बलि।
[२४५]ना०प्र०—बकससी।
[२४६]यु०—भक्ति बिगारी कामियाँ।
[२४७]ना०प्र०—थें, यू०—सो।
[२४८]यु०—गँवायो।
[२४९]यु०—अमृत।
[२५०]ना०प्र०—विषयो, हनु—विष को, यु०—विष कूँ गुप्त०—विष ई।
[२५१]हनु, यु०—भाजै।
[२५२]ति०—भावै त्यौं परमोधि।
[२५३]गुप्त—मनकण।
[२५४]ना०प्र०—प्रमोध।
[२५५]ना०प्र०—विषै कर्म की कंचुली, हनु० — कामी करम की केंचुलि, यु०—कामी कर्म की कौचली।
[२५६]ना०प्र०—फोड़ै।
[२५७]यु०—हनु०कोइ पूरबला भाग।
[२५८]गुप्त—पूरबिला।
[२५९]ना०प्र०—लज्या।
[२६०]ना०प्र०—माँहै अहिलाद।
[२६१]यु०—थाहरा।
[२६२]ना०प्र०—भूष।
[२६३]ना०प्र०—आपणीं।
[२६४]ना०प्र०—भुगत्यौं।
[२६५]ना०प्र०—सबरौ कहैं, यु०—सब एक सी।
[२६६]ना०प्र०—तामैं हाथ न बाहि।
[२६७]यु—हनु०—कहता हूँ कहि जात हूँ।
[२६८]ति०—हूँ।
[२६९]यु०—समझै, हनु०—मानै।
[२७०]ना०प्र०—पड्या।
[२७१]ना०प्र—भूँचै विषै।
[२७२]ना०प्र०—आपण।
[२७३]ना०प्र०—ताथैं।
[२७४]यु०—कबिरा।
[२७५]ना०प्र०—सुणि हो।

[२७६]ना०प्र०—सुजांण
[२७७]हनु०, यु०—कै।
[२७८]ना०प्र०—नहीं तर तजौं पराँण, यु०, हनु०—नातर तजिहौं प्रान।
[२७९]यु०—कबिरा जो कोई।
[२८०]ना०प्र०—जेका।
[२८१]ना०प्र०—जांणि।
[२८२]ना०प्र०—प्रेम पुरिष, तिवारी—परम पुरिस।
[२८३]हनु०,यु०—सुन्दरि तौ साँई भजैं।
[२८४]हनु०, यु०—मन मनसा को मारिकै, नन्हा करि कै पीस।
[२८५]ना०प्र०—करौं।
[२८६]ना०प्र०—पीसि।
[२८७]हनु, यु०—पदम।
[२८८]ना० प्र०—झलकै।
[२८९]गुप्त—मेल्हा।
[२९०]ना०प्र०—झूलण।

संदर्भ ग्रंथ सूची

हजारी प्रसाद द्विवेदी (१९९०) —कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
जय सिंह (२००९) —(सं०) कबीर, प्रकाशन विभाग —सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
जाफर, अली सरदार (२००७) —कबीर बानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
तिवारी, डॉ० पारस नाथ (२००५) —कबीर वाणी, राका प्रकाशन, इलाहाबाद
मिश्र, शिवकुमार (२०१०) —भक्ति आन्दोलन एवं भक्ति काव्य, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
डॉ० रघुवंश (२००९) —कबीर एक नई दृष्टि, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
वंशी, बलदेव (२००६) —(सं०) कबीर एक पुनर्मूल्यांकन, आधार प्रकाशन, हरियाणा
सिंह, डॉ० वासुदेव (२००९) —(सं०) कबीर साखी सुधा, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद
सिंह, डॉ० वासुदेव (२००४) —(सं०) कबीर, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,20-30**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 01 फरवरी 2014

रेहन पर रग्घू में परिवर्तित पारिवारिक सम्बन्ध

अंजुबाला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *रेहन पर रग्घू में परिवर्तित पारिवारिक सम्बन्ध* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंजुबाला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

भू–मण्डलीकरण के इस दौर में सम्बन्ध में प्रेम, आदर–सम्मान के स्थान पर लाभ–लोभ की पद्धति बढ़ती जा रही है। पारिवारिक सदस्यों के बीच जो एक भावात्मक मधुर सम्बन्ध हुआ करता था, वह अब समाप्त होता जा रहा है। मनुष्य व्यक्ति विकास की दृष्टि से जहाँ एक ओर ऊँचाइयों पर पहुँचता नजर आ रहा है, वहीं वह दूसरी ओर वह अपनी पारिवारिक जड़ों से कटता जा रहा है। 'रेहन पर रग्घू' में रघुनाथ का परिवार भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जिसके माध्यम से भारतीय समाज के पारिवारिक सम्बन्धों में उभरते परिवर्तनों को अभिव्यक्त किया गया है। परम्परागत रागात्मक सम्बन्धों का भाव किन भयावह परिणामों को जन्म दे रहा है, इन सभी की सफल अभिव्यक्ति इस उपन्यास में हुई है।

'रेहन पर रग्घू' प्रख्यात कथाकार काशीनाथ सिंह द्वारा रचित एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में भारतीय समाज में हो रहे पारिवारिक सम्बन्धों के बदलावों को उद्घटित किया गया है जो वर्तमान युग की वास्तविकता को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। परिवार हमारे सामाजिक जीवन का मूलाधार है। परिवार में व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा समस्त सामाजिक सम्बन्धों का विकास होता है। इस प्रकार परिवार समाज की अत्यन्त महत्वपूर्ण इकाई है।

प्रेमचन्द–पूर्व हिन्दी उपन्यास

परिवार के पारंपरिक आदर्श हिन्दी उपन्यास की प्रारम्भिक प्ररेणा सामाजिक रही। सामाजिक समस्याओं का आध्यानात्मक विवेचन ही प्रारंभिक हिन्दी उपन्यास का मुख्य उद्देश्य रहा। इन उपन्यासों की मूल दृष्टि 'सुधारवाद' रही। उनकी दृष्टि में सुधार का अर्थ था –परिवर्तन के क्रम को रोककर सामाजिक सम्बन्धों और समाज संस्थाओं के पारंपरिक स्वरूप को यथावत रखना। प्रेमचन्द –पूर्व युग की धारा का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रमुख उपन्यासकार थे– श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट, लज्जाराम मेहता, किशोरी–लाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी इत्यादि। श्रद्धाराम फिल्लौरी का 'भाग्यवती' (१८७७ई०), श्री निवासदास का 'परीक्षागुरू' (१८८२ई०),

* एम0फिल0 हिन्दी, दिल्ली विश्वविद्यालय (नई दिल्ली) भारत। (पुनः प्रकाशन)

© लेखक 2017, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' सन् (१८८६ई०) तथा 'सौ सुजान एक अजान' (१८९२ई०), किशोरलाल गोस्वामी के 'स्वर्गीय कुसुम' 'नीलावर्ता व आदर्श सती' 'पुनर्जन्म का सौतिया डाह' इत्यादि लज्जाराम मेहता के 'स्वतन्त्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी (१८९९ई०), 'आदर्श दम्पत्ति (१९०७ई०), 'बिगड़े का सुधार' (१९०७ई०) अथवा 'सती सुखदेवी' 'सुशीला', 'विधवा' गोपालराम गहमरी के 'सास–पतोहू' 'देवरानी–जिठानी', 'डबल बीबी' इत्यादि ऐसे ही उपन्यास हैं जिनमें परिवार के पारंपरिक रूप को ही तरजीह दी गयी है। परिवार में आ रहे परिवर्तनों को इन लेखकों ने उचित नहीं माना तथा पुराने मूल्यों का प्रतिपादन ही इनका मुख्य ध्येय रहा।

प्रेमचन्द–पूर्व युग के उपन्यासों में पारिवारिक चित्रण की सबसे बड़ी परिधि तो है– सम्बन्धों का सीमित दायरा। इन उपन्यासों का कथावृत्त घर की चाहरदीवारी के सारे सम्बन्धों को भी नहीं समेट पाता। इन उपन्यासों में उच्च मध्यवर्ग एवं मध्यवर्ग के जीवन का ही चित्रण हुआ है। किस्सांगो शैली में लिखे गये ये उपन्यास इन दो वर्गों के पारिवारिक तथा परिवार–बाघ्य जीवन की ही छवियाँ उभारते है। निम्नवर्ग के परिवार, जीवन और परिस्थितियों पर हो रहे परिवर्तनों का इन उपन्यासों में कोई चित्रण नहीं हुआ है। वस्तुत: प्रेमचन्द–पूर्वयुग के उपन्यसकारों की दृष्टि उनके अपने या अपने से ऊँचे वर्ग तक ही सीमित रही है। उनके अपने सामाजिक स्तर से नीचे स्थित निम्नवर्ग के लोगों में धीरे–धीरे बह रही प्रगति की अंतधारी को पहचानने और उसे प्रखर अभिव्यक्ति देने में वे सर्वथा विफल रहे।

प्रेमचन्द का रचना–काल : निर्णायक परिवर्तन का युग

प्रेमचंद के 'सेवा सदन' (१९१८ई०), का प्रकाशन हिन्दी उपन्यास में एक युगांतकारी घटना थी। यह एक ऐसे युग के आरम्भ का संकेत था, जिसमें उपन्यास काल्पनिकता की उड़ानों का मोह छोड़कर जीवन के प्रत्यक्ष और वास्तविक अनुभवों, सम्बन्धों, समस्याओं, चुनौतियों से साक्षात्कार करने वाला था। प्रेमचंद के आविर्भाव का युग भारतीय समाज में अत्यंत निर्णायक परिवर्तनों, प्रवृत्तियों, धाराओं और प्रेरणाओं की क्रियाशीलता का युग था। एक ऐसा युग, जब उन्नीसवीं सदी में आरम्भ हुआ भारत का नव–जागरण धीरे–धीरे परिपक्व हो चला था। वह बौद्धिकता और उच्चवर्ग तक सीमित रहने के प्रारंभिक बंधनों को तोड़कर जन–जागरण का रूप ले रहा था। नव–जागरण का जन–जागरण में रूपांतरण कई स्तरों पर घटित हो रहा था। राजनीति में वह महात्मा गाँधी के रूप में भारतीय राष्ट्रवाद के युग–पुरूष के प्रादुर्भाव से लक्षित हुआ, तो सांस्कृतिक क्षेत्र में यह रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा शान्ति निकेतन की स्थापना का युग था। उधर सम्पूर्ण भारतीय समाज एक नवीन–चेतना से झंकृत हो रहा था। वह परंपरा और आदर्शों के प्रति पहले से कहीं अधिक वैज्ञानिक दृष्टि अपना रहा था। शताब्दियों के बाद देश का सामाजिक विवेक जागृत हुआ था और उसके प्रकाश में पारंपरिक मूल्यों, सामाजिक स्थितियों, सम्बन्धों की विषमताओं और रूढ़ियों–कु–रीतियों की बेडियों को तोड़ा।

प्रेमचन्द पारिवारिक जीवन एवं उसके महत्व से परिचित थे। उन्होंने अपने उपन्यासों में पारिवारिक जीवन एवं उसकी समस्याओं को उद्घाटित किया है। संयुक्त परिवार के विघटन की प्रक्रिया को भी उन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है – संयुक्त परिवार प्राचीन काल से ही हिन्दू समाज व्यवस्था का आधारस्तम्भ रहा है। प्रेमचन्द–युग में औद्योगिक अर्थ–व्यवस्था के विकास के कारण समाज का पूरा आर्थिक ढाँचा बदल गया था, साथ ही दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित नव–युवक वैयक्तिक स्वार्थ को प्रमुखता देने लगे थे। इन परिस्थितियों में संयुक्त परिवारों का विघटन होना निश्चित एवं अनिवार्य था। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में संयुक्त परिवार के विघटन का चित्रण करते हुए उन परिस्थितियों एवं कारणों पर भी प्रकाश डाला है जो इस प्रथा के विघटन के लिए उत्तरादायी है। संयुक्त परिवार के विघटन का चित्रण प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम १९२२ उपन्यास में हुआ है। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास के लाला प्रभाशंकर और उनके भाई के पुत्र ज्ञानशंकर का संयुक्त परिवार है जब तक प्रभाशंकर के बड़े भाई जटाशंकर जीवित थे तब तक भाइयों के पारस्परिक प्रेम के कारण कभी पारिवारिक कलह नहीं हुआ। जटाशंकर की मृत्यु के बाद उनका पुत्र ज्ञानशंकर नित्य किसी न किसी बात को लेकर अपेन चाचा से झगड़ा किया करता है। वास्तव में वह अलग हो जाना चाहता है प्रभाशंकर परिवार की मान–मर्यादा की रक्षा के लिए सदैव प्रत्यनशील रहते है, लेकिन ज्ञानशंकर

उनका विरोध करता है। ज्ञानशंकर और प्रभाशंकर के जीवनादर्श में महना वैशम्य है। अत: प्रभाशंकर के चाहने पर भी संयुक्त परिवार का अधिक दिनों तक बने रहना कठिन हो जाता है।

'प्रेमाश्रम' में ज्ञानशंकर के वैयक्तिक स्वार्थ के कारण संयुक्त परिवार टूटता है। लाला प्रभाशंकर के परिवार में तीन पुत्र, दो पुत्रियाँ, एक पुत्रवधू तथा पति–पत्नी है। फलस्वरूप इलाके की आय का अधिकारों भाग उनके परिवार पर व्यय होता है। ज्ञानशंकर इसे सह नहीं पाता। अत: द्वेश और दम्य के आवेग में वह अपव्यय करता है। ज्ञानशंकर की इस स्वार्थ भावना को प्रभाशंकर की पत्नी ताड़ लेती है और जब वह इसका विरोध करती है तो ज्ञानशंकर को अलग हो जाने को बहाना मिल जाता है। ज्ञानशंकर के सन्दर्भ में प्रेमचंद ने स्पष्ट कर दिया है कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नव–युवकों में वैयक्तिक स्वार्थ की भावना प्रबल होती जा रही है। अत: वे अपने निकटतम सम्बन्धियों के साथ रहकर सुख–दु:ख झेलने की अपेक्षा केवल अपनी पत्नी और बच्चों के पोषण का ही भार उठाना चाहते हैं। ज्ञानशंकर की स्वार्थी प्रवृत्ति के लिए प्रभाशंकर उसकी शिक्षा को उत्तरादायी ठहराते हैं। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित नव–युवक व्यक्तिगत हितों पर ही बल देते हैं, इसलिए उनके हदय में संयुक्त परिवार को बनाये रखने के लिए विशेष आग्रह नहीं है।

इस प्रकार प्रेमचंद युग के उपन्यासों से ही संयुक्त परिवार में विघटन होने लगा था और उसके कारण परिवारिक सम्बन्धों में बदलाव भी आने लगे।

'रेहन पर रग्घू' में परिवर्तित पारिवारिक सम्बन्ध

संयुक्त परिवारों के विघटन के साथ–साथ आज महानगरों की स्थिति ऐसी है जहाँ एकल परिवार है जिसमें एक बेटी, दो बेटे, शीला–रघुनाथ है सब मिलाकर पाँच सुखी नहीं था। उदारीकृत नई–अर्थव्यवस्था ने मनुष्यों को अर्थ के नजरिए से बेहद लुभावना वातावरण उपलब्ध कराया है। शहरों एवं विदेशों में अधिक सुविधाएँ जैसे नौकरी के अधिक अवसर, शिक्षा की व्यापक सुविधाएँ उच्च जीवन स्तर और ग्रामीण क्षेत्रों में अपेक्षित साधनों का अभाव, बेरोजगारी, कृषि पर अतिरिक्त भार, कृषि के प्रति अरूचि जाति, धर्म के बंधन आदि ऐसे कारक है, जिनकी वजह से लोग गाँवों को छोड़कर शहरों एवं विदेशों की तरफ अग्रसर होने लगे है।

कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में संयुक्त परिवार सफल थे किन्तु नगरीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था ने संयुक्त परिवार के अस्तित्व को संकट में डाल दिया है। इस कारण आज एकल परिवार स्थापित होते जा रहे हैं। नगरीय समाज में गतिशीलता, भौतिक चेतना तथा व्यक्तिवादिता के कारण नवीन पारिवारिक ढाँचे का विकास हुआ है। व्यक्ति को व्यक्तिवादी नितांत स्वार्थी बना देती है। वह अपने चारों ओर अपने स्वार्थ, अपनी इच्छाओं का ऐसा घेरा बना लेता है, जिसमें वह अकेला रहता है, किसी कार्य को उसे कैसे करना है इसका निर्णय वह स्वयं अपनी सुविधानुसार करता है।

यह उपन्यास भू–मडण्लीकरण के दौर में लिखा गया है।

भू–मण्डलीय सोवियत संघ के विघटन के बाद १९९१ में यह शब्द व्यापक रूप से प्रचार में आया। विश्व के बड़े और राष्ट्र जिनका अगुवाई अमेरिका करता है। उसके केन्द्र ने सर्वजन हिताय की भावना थी लेकिन आज मल्टीनेशनल कम्पनी और बड़े राष्ट्रों के स्वार्थ सिद्धि तक सीमित हो गया है।

भू–मण्डलीयकरण के इस दौर में लोगों की आवश्यकताएँ बढ़ गई है, जीवन स्तर ऊँचा उठ गया है। उस स्तर को कायम रखने के लिए कमाने की आवश्यकता बढ़ गयी है। घर के काम–काज घर के बाहर होने लगे हैं। इससे पारिवारिक सम्बन्ध दिनों –दिन संकटगस्त हो चले हैं। इस प्रकार इस वातावरण में आर्थिक लाभ कमाना ही व्यक्ति का एकमात्र उद्देश्य रह गया है। हर सम्भव तरीके से पैसा कमाने के प्रयास में व्यक्ति की सोच अर्थ प्रधान हो गई है। इसके फलस्वरूप आज जब प्रत्येक व्यक्ति कमाने लगा है तो यह कोई नहीं चाहता कि अपनी कमाई दूसरों पर खर्च करे। व्यक्तिवादी भावना के कारण हर एक अपने पैसे का अपने घर खर्च करना चाहते है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हो रहा है कि परिवार के सदस्य एक साथ नही रहना चाहते। परिवार के विभिन्न सदस्यों के मध्य स्थापित प्रेम, आदर जैसी भावनाओं पर आधारित न होकर बुद्धि तर्क तथा अर्थ द्वारा प्रेरित हो रहे है; किन्तु इसके प्रभाव के कारण पारिवारिक सम्बन्धों को ये कैसे तोड़ता है, इसकी वास्तविकता इस कृति में देखी

जा सकती है। उपन्यासकार ने इस उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव एवं उसके कारण बदलते पारिवारिक सम्बन्धों को उद्‌घटित करने के लिए एक ऐसे मध्यवर्गीय परिवार का चयन किया है जो भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व कर सके हैं।

रघुनाथ परिवार का मुखिया है जो डिग्री कालेज में अध्यापक है। रघुनाथ अपना पूरा प्रयास इस लक्ष्य पर लगता है कि किस तरह अपने बच्चों को पढ़ा–लिखाकर स्थिर कर सके। रघुनाथ एक ऐसा प्रगतिशील एवं विकासशील पिता है जो अपने बेटों के साथ–साथ बेटी को भी शहर में रखकर पढ़ाता है। इसी विकास के रास्ते पर उन बच्चों को डालने की कोशिश में रघुनाथ की जिन्दगी मुठ्ठी से रेत की तरह फिसलती दिखाई देती है और फिर एकाएक जीवन में अकेला रह जाता है, उपन्यास के अंत में रघुनाथ के पास कोई घर नहीं बचता, न सहारा, न कोई आत्मीय सम्बन्ध जिसके सहारे वह अपना बुढ़ापा काट सके, इस प्रकार यह उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जिसकी बुनावट में उपभोक्तवादी संस्कृति का प्रयोग है। रघुनाथ के जीवन का यथार्थ भू–मंडलीकरण के दौर का ऐसा यथार्थ है जहाँ व्यक्ति, अकेले तिल–तिल कर मरने के लिए विवश है। उसके साथ अपने समाज, परिवार की कोई हमदर्दी, सहानुभूति नहीं है। इस प्रकार इस दौर में पारिवारिक सम्बन्धों का कोई मूल्य नहीं रह गया है। महानगरों के भाग–दौड़ और चकाचौध से भरे जीवन में सम्बन्धों की स्वाभाविक और आत्मीयता समाप्त होती जा रही है। उपन्यास के बारे में उमा शंकर चौधरी का कहना है, ''आज जब विकास अधिक है, चकाचौध अधिक है। रफ्तार अधिक है, सम्भावनाएँ अधिक है, सपने अधिक है और सपनों के पूरे होने की गुजांइश अधिक है तब वही सम्बन्ध कैसे रहते? जिस रफ्तार से जिन्दगी बदली, सोच बदली, जीवन की प्राथमिकताएँ बदली दु:ख है कि उसी रफ्तार से सम्बन्धों के बीच की उष्मा भी बदली जब समाज में मुनाफे की होड़ मचेगी, तब सम्बन्धों और इज्जत से उपर आबार पूँजी का तांडव होगा जब सम्बन्धों का बचना कठिन होगा ही''।

अन्त: पारिवारिक सम्बन्ध

भारत में प्राचीन काल से ही संयुक्त परिवार प्रथा रही है। यहाँ परम्परागत संयुक्त परिवार एक ऐसा परिवार होता है, जिसमें तीन या उसके अधिक पीढियों के लोग साथ–साथ रहते है और जो आवास, सम्पत्ति और कार्य में संयुक्त होता है। कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में संयुक्त परिवार सफल थे किन्तु नगरीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था ने संयुक्त परिवार के अस्तित्व को संकट में डाल दिया है। इस कारण आज एकल परिवार स्थापित होते जा रहे है। नगरीय समाज में गतिशीलता, भौतिक चेतना तथा व्यक्तिवादिता के कारण नवीन पारिवारिक ढाँचे का विकास हुआ है। संयुक्त परिवारों के विघटन के साथ–साथ आज महानगरों की स्थिति ऐसी है जहाँ एकल परिवार है जिसमें एक बेटी, दो बेटे, शीला–रघुनाथ है सब मिलाकर पाँच जनों का परिवार किन्तु इस छोटे परिवार में रघुनाथ सुखी नहीं था। उदारीकृत नई–अर्थव्यवस्था ने मनुष्यों को अर्थ के नजरिए से बेहद लुभावना वातावरण उपलब्ध कराया है। शहरों एवं विदेशों में अधिक सुविधाएँ जैसे नौकरी के अधिक अवसर, शिक्षा का व्यापक सुविधाएँ उच्च जीवन स्तर और ग्रामीण क्षेत्रों में अपेक्षित साधनों का अभाव, बेरोजगारी, कृषि पर अतिरिक्त भार, कृषि के प्रति अरूचि जाति धर्म के बंधन आदि ऐसे कारक है जिनकी वजह से लोग गाँवों को छोड़कर शहरों एवं विदेशों की तरफ अग्रसर होने लगे है।

संजय की पत्नी सोनल के पिता राजीव सक्सेना उनके विवाह की सोदेबाजीनुमा बातचीत के बीच उसे अचेत करते हुए अपने पक्ष में तर्क देते है। ''देखो संजू। लॉ ऑफ ग्रेविटेशन का नियम केवल पेड़ो और फलों पर ही नहीं लागू होता, मनुष्यों और सम्बन्धों पर भी लागू होता है। हर बेटे–बेटी के माँ–बाप पृथ्वी है। बेटा ऊपर जाना चाहता है और ऊपर, थोड़ा सा और ऊपर, माँ–बाप अपने आकर्षण से उसे नीचे खींचते है। आकर्षण संस्कार का भी हो सकता है और प्यार का भी माया–मोह का भी मंशा गिराने की नही होती, मगर गिरा देते है। अगर मैंने अपने पिता की सुनी होती तो आज मैं हेतमपुर में पटवारी रह गया होता''। इस प्रकार भू–मंडलीकरण के इस दौर में सम्बन्धों में प्रेम, आदर–त्याग के स्थान पर लाभ–लोभ की पद्धति बढ़ती जा रही है। पारिवारिक सदस्यों के बीच जो एक भावात्मक मधुर सम्बन्ध हुआ करता था, वह अब समाप्त होता जा रहा है। मनुष्य व्यक्ति–विकास की दृष्टि से जहाँ एक ओर ऊँचाईयों पर पहुँचता नजर आ रहा है; वहीं दूसरी ओर वह अपनी पारिवारिक जड़ों से कटता जा रहा है।

माता–पिता व संतान बढ़ती दूरियाँ

भू–मंडलीकरण में आज बच्चे पर्याप्त स्वतंत्र हैं। वे अपने माता–पिता के विचारों को स्वीकार नहीं करते हैं। इस उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव के कारण मारा–मारी इतनी बढ़ गई है कि हर व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा धनोपार्जन करना चाहता है। इस वातावरण में पले–बढ़े युवक–युवतियों में आत्मक्रेन्दिता बढ़ती जा रहा है। माता–पिता की सलाह उन्हें अपनी जीवन में अनुचित हस्तक्षेप प्रतीत होती है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने आज सबसे अधिक युवा पीढ़ी को प्रोत्साहित किया है, आज युवा पीढ़ी के लिए 'पूँजी' ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उपन्यास में रघुनाथ का बड़ा ज्येष्ठ पुत्र संजय ऐसे ही चरित्र का प्रतिनिधित्व करता है जिसके लिए पैसा और उसका स्रोत की प्रमुख है। उसके लिए पारिवारिक सम्बन्ध कोरी भावुकता है। माता–पिता तथा संतान के बीच जो माता –पिता के प्रति आदर, श्रद्धा प्रेम का भाव था, वह अब समाप्त होता जा रहा है। रघुनाथ का बड़ा बेटा संजय पिता द्वारा तय की गई शादी को छोड़ सोनल से शादी कर लेता है क्योंकि सोनल के साथ अमरीकी बहुराष्ट्रीय कम्पनी में कैलिफौर्निया जाने का सुनेहरा अवसर है। पिता द्वारा तय की गई शादी संजय के लिए कोई महत्व नहीं रखती, वृद्ध पिता को इस कारण अपने कॉलेज से निकाल दिया जाता है; किन्तु संजय पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इस प्रकार संजय अपने पिता की इज्जत पर पाव रखकर वहाँ पहुँच जाता है जहाँ से विश्व संचालित होता है।

रघुनाथ अपने बेटे को प्रतिपथ पर अग्रसर करने के लिए कर्ज लेता है, कंजूसी करता है। वही पुत्र उनकी मान–मर्यादा तथा प्रतिष्ठा को समाज में समाप्त कर देता है। एक वृद्ध पिता के दर्द को रघुनाथ के द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है, जब रघुनाथ कहता – ''इसी दिन के लिए उन्होंने पाल–पोस कर बड़ा किया था, पढ़ाया–लिखाया था, पेट काटे थे, कर्ज लिए थे, खेत रेहन पर रखे थे और दुनिया भर की तवालते सही थी''।

इस प्रकार यह आज की युवा–पीढ़ी है जिसे केवल अपने स्वार्थ से लेना–देना है, उन्हें अपने माता–पिता तब तक ठीक लगते है जब तक वे उनकी इच्छानुसार उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। अमेरीका की चकाचौंध, डालर की कमाई, साफ्टवेयर इंजीनियरिंग जैसा व्यावसायिक कोर्स संजय के भीतर से एक अर्थ–संचालित इंसान बना देता है। इस प्रकार भू–मण्डली –करण ने इस भारतीय समाज को जो दिया है वह है – सेंवदनशुन्यता, सम्बन्ध विहीनता।

रघुनाथ का छोटा पुत्र धनंजय एक ऐसे युवा–वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो बिना मेहनत किए रातों–रात अमीर बन जाना चाहता है। इस भू–मंडलीकरण के दौर में जो सफल है वे अमरीका जा रहे है और जो असफल है जैसे धनंजय उनका लक्ष्य बिना मेहनत किए आराम का जीवन बीताना है। इस दौर में पिता–पुत्र के सम्बन्धों में परिवर्तन आ गया है पहले जो पिता–पुत्र के सम्बनधों में प्रेम, आदर, कृतज्ञता का भाव था उसका स्थान अब स्वार्थ ने ले लिया है। रघुनाथ का छोटा बेटा धनंजय संजय के द्वारा दिए पाँच लाख रू० में से चालीस हजार रूपये चुना लेता है पिता द्वारा पूछने पर वह गलत ढंग से जवाब देता है – रघुनाथ कहता है – 'तुमने तो कुछ इधर–उधर नहीं किया। इस पर धनंजय कहता है, ''मैं जानता था यही शक करेंगे आप स्वभाव से ही शक्की हैं''। इस प्रकार माता–पिता का विरोधी धनंजय बेटे के रूप में नए सम्बन्धों की व्याख्या करता है। जहाँ सम्बन्ध नहीं स्वार्थ की निकटता है। धनंजय का लक्ष्य आधुनिकतम सुविधाओं से पूर्ण आराम का जीवन बिताना है इस कारण वह दिल्ली पहुँच जाता है और वह बेहद अमीर लड़की विजया से दोस्ती कर लेता है ताकि बिना मेहनत किए आराम का जीवन बिता सके। विजया के बारे में सोनल के पूछने पर धनंजय कहता है– ''बात सिर्फ इतनी है कि उसे मेरी जरूरत है और मुझे उसकी जब तक जाँब नहीं मिल जाती।

एक पिता के लिए यह किसी बड़े हादसे से कम बात नही है कि उसका पुत्र किसी विधवा लड़की से जिसका बच्चा भी हो उससे शादी करें, किन्तु रघुनाथ अपने बेटे के बारे में सब कुछ जानता है वह अपनी पत्नी शीला से कहता है, ''शीला मुझे पता है कि वह इनसे भी आगे जा रहा है। उसने एक ऐसी विधवा लड़की ढूँढ़ निकाली है जिसके दो साल का बच्चा है। यही वहाँ वह कोई अच्छी खासी सर्विस भी कर रही है। ''शीला मैं जानता हूँ उसे पढ़ने में कभी दिलचस्पी नहीं रही उसकी अपने बाप से किस स्वर में बातें करता है, इसे देखा है तुमने, वह शार्टकट से बड़ा आदमी बनना चाहता है। उसके लिए बड़ा आदमी का मतलब है 'धनवान' आदमी, और वह भी बिना खून–पसीना बहायें, बिना मेहनत के।''

इस प्रकार भोगवाद में अत्यधिक आस्था के परिणामस्वरूप पारिवारिक सम्बन्धों की पवित्रता और निष्ठा भंग होती जा रही है। सरला रघुनाथ की पुत्री है। वह अपने इलाके की पहल एम०ए०, बी०एड्० है। वह स्कूल में नौकरी करती है। पाश्चात्य शिक्षा, औद्योगीकरण, यातायात के साधनों की सुविधा आदि के कारण वर्तमान समय में स्त्री को अर्थोपार्जन के लिए विभिन्न क्षेत्रों में सुविधाएँ प्राप्त हुई, व्यवसायी युग की भव्यता, सुख–सुविधा की अदम्य लालसा, समाज में पुरूष के समान अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने की प्रबल आँकाक्षां और बेहतर जीवन जीने के इच्छा ने आज स्त्री की स्थिति में परिवर्तन किया है। 'सरला' भी ऐसे ही चरित्र का प्रतिनिधित्व करती है। हर माता–पिता की तरह शीला–रघुनाथ भी सरला का विवाह करना चाहते है किन्तु दहेज की समस्या के कारण उसके रिश्ते की बात कही बन नहीं पाती, दूसरी तरफ सरला का विवाह करने से इंकार कर दे देती है उसके सामने विश्व पूँजी बाजार की चमक–दमक है, कभी न खत्म होने वाली महत्वकाँक्षा एवं सपनों की श्रृंखला है अचानक वह सबको पा लेने के लिए मचल उठती है, वह एक आधुनिक नारी है जो अपनी मर्जी से विवाह करना चाहती है। ''मैं करूँगी लेकिन अपनी शर्तो पर, आप मेरी 'स्वाधीनता, दूसरो के हाथ बेच रहे थे, यहाँ मेरी 'स्वाधीनता' सुरक्षित है, आप 'अतीत और वर्तमान, से आगे नहीं देख रहे थे, हाँ! मैं भविष्य देख रही हूँ जहाँ 'स्पेस' ही स्पेस है।''

इस तरह आधुनिक शिक्षा, वैय्यक्तिक चेतना, फिल्मों आदि के प्रभाव के कारण नव–युवक–युवतियों में प्रेम–विवाह, अन्तर्जातीय विवाह को बढ़ावा मिला है। इन विवाहों में परिवार के सदस्यों की कोई भूमिका नहीं रहती, सरला जब हरिजन जाति के लड़के से विवाह करना चाहती है तो रघुनाथ उसे घर से निकाल देता है; किन्तु अंत में जब शीला रघुनाथ को यह सूचना देती है कि उसने विवाह नहीं किया तो इस पर रघुनाथ कहता है कि इससे तो वह विवाह कर लेती। इस प्रकार शीला–रघुनाथ मन में सरला के प्रति प्रेम है किन्तु सरला का ध्यान केवल असम्भव ऊँचाइयों को छू लेने में है, जो किसी भी सामान्य युवती के लिए कठिन है, लेकिन जीवन में वह संतुलन नहीं बना पाती। सब कुछ पा लेने के चक्कर में वह अपना सर्वस्व खो देती है कठिनाई पड़ने पर वह अपनी माँ को अपने पास बुला लेती है। इस प्रकार आज बच्चे माता–पिता का सहारा बनने की बजाय बोझ बन जाते है।

रघुनाथ के ऊपर जब बेटों का सहारा नहीं रहा। तब रघुनाथ के भतीजे उसकी जमीन को कब्जाना चाहते है। रघुनाथ को भी अपनी धरती तथा मर्यादा से मोह था, भतीजों का उत्पात, अपमान का सामना करने के लिए हर पिता की तरह वे भी अपने बेटों की ओर देखते है –किन्तु बेटों में अपनी जमीन से कोई मोह नहीं है वह अपने पिता से कहते है – ''क्या कर लिया खेती करके आपने? कौन सा तीर मार लिया? खाद महँगी, नहर में पानी नहीं, मौसम का भरोसा नहीं, बैल रहे नहीं, भाड़े पर ट्रैक्टर मिले न मिले, हलवाहे और रहे नहीं – किसके भरोसे खेती करो? और खेती भी तब करो जब हाथ में बाहर से चार पैसे आये, क्या फायदा ऐसी खेती में?

इस प्रकार संजय, धनंजय की माँग कर बैठते है। मजबूत कंधे की अनुपस्थिति में वृद्ध पिता अपने भतीजों द्वारा पिट जाता है। पिता अपने बेटों को खबर देते है लेकिन बेटों को अपनी चमक–दमक वाली जिन्दगी से फुर्सत ही नहीं है। एक पिता ने अपनी जिस इज्जत के लिए ता–उम्र मेहनत की, जीवन–भर संघर्ष किया समय के इतने घाव सहें, झंझावत झेले उन्हीं बच्चों के लिए माता–पिता की इज्जत कोई मायने नहीं रखती। रघुनाथ की इस टीस को इस प्रकार समझा जा सकता है, वह अपनी पत्नी शीला से कहता है – ''शीला हमारे तीन बच्चें हैं लेकिन पता नहीं क्यों कभी–कभी मेरे भीतर ऐसी हूक उठती है जैसे लगता है – मेरी औरत बाँझ है और मैं निःसंतान पिता हूँ। माँ और पिता होने का सुख नहीं जाना हमने। हमने न बेटे की शादी देखी, न बेटों की, न बहू देखी न होने वाला दामाद देखा। हम ऐसे अभागे माँ–बाप है जिसे उनका बेटा अपने विवाह की सूचना देता है और बेटी धौंस देती है कि इजाजत नहीं दोगे तो न्यौता नहीं दूँगी।

उपन्यासकार रघुनाथ की इच्छा को इस प्रकार व्यक्त करते हुए कहते है – ''रघुनाथ भी चाहते थे कि बेटे आगे बढ़े। वे खेत और मकान नहीं है कि अपनी जगह ही न छोड़ें; लेकिन यह भी चाहते थे कि ऐसा भी मौका आए जब सब एक साथ हों, एक जगह हो आपस में हँसे गाए, लड़े, झगड़े, हा–हा–हू–हू करे, खाए पिएँ, घर का सन्नाटा टूटे। मगर कई साल हो रहे है और कोई नहीं। और बेटे आगे बढ़ते हुए इतने आगे चले गए कि वहाँ से पीछे देखे भी तो न बाप नजर आएगा न माँ।

इस प्रकार वर्तमान समय में बच्चों के मन में माता–पिता के प्रति आदर, प्रेम, कर्तव्यनिष्ठा का भाव समाप्त हो चला है। इस कारण पारिवारिक सम्बन्ध दिनों–दिन संकटग्रस्त होते जा रहे हैं।

दामपत्य सम्बन्ध या पति–पत्नी के बीच सम्बन्ध

(क) रघुनाथ तथा शीला का सम्बन्ध; इस कृति में शीला रघुनाथ पुरानी पीढ़ी के रूप में पति पत्नी के प्रतिनिधित्व चरित्र है। स्वतंत्रता के उपरान्त नए विकास कार्यों होने पर नगरों में व्यवसाय की सम्भावनाएँ बढ़ीं, ग्रामीण युवक शहर की ओर आकृष्ट हुए। बड़ा आदमी बनने का ख्वाब या धन कमाने की मजबूरी गाँव से लोगों को शहर की ओर खींच लेती है। इस प्रकार इस परिवेश में मध्ययवर्गीय व्यक्ति आर्थिक स्वार्थों के इस कठोर संघर्ष में जीवन भर अपनी इच्छाओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति करने में लगा रहता है।

आर्थिक स्पर्धा एवं होड़ की इस लड़ाई में वह अपना सम्पूर्ण प्रयास लगा देता है। इसी बीच वह अपनी पत्नी शीला से कभी प्रेम से नहीं रह सका। उपन्यास में उपन्यासकार की टिप्पणी है –''शीला के साथ, रघुनाथ के रिश्ते दाम्पत्य के ही रहे, प्यार के नहीं हो सके।''

रघुनाथ को अंत में निराशा होती है कि वह कभी शीला को प्रेम नहीं कर सका, आर्थिक लड़ाई लड़ते समय वह यह भूल गया कि उसके भीतर का स्नेहिल स्रोत सूख गया है। इस प्रकार रघुनाथ शीला के सम्बन्धों दाम्पत्य ही रहे। इस भागदौड़ भरे जीवन में पति–पत्नी के बीच जो 'प्रेम' भाग होना चाहिए वह इन सम्बन्धों में नहीं रहा।

(ख) संजय एवं सोनल का सम्बन्ध; महानगरों में शिक्षा का प्रसार, व्यक्ति स्वातंत्र्य, नवीन मूल्य दृष्टि आदि ऐसे अनेक परिस्थितियाँ प्रकट हुईं जिन्होंने परम्परागत वैवाहिक सम्बन्धों को परिवर्तनोन्मुख कर दिया है। महानगरों में विकसित भौतिकवादी दृष्टिकोण ने प्रचलित विवाह सम्बन्धी मान्यताओं को प्रभावित किया है। वर्तमान समय में विवाह न तो कोई पवित्र धार्मिक सामाजिक कर्त्तव्य है और न ही एक अटूट बंधन। आज विवाह अपनी महत्वकांक्षा पूरी करने का तथा तात्कालीन आवश्यकता पूरी करने का माध्यम बन गया है। अपना स्वार्थ पूरा हो जाने पर उसे तोड़ा भी जा सकता है।

संजय भी इसी कारण सोनल से विवाह करता है ताकि वह अमेरिका जा सके। सोनल के साथ उसके पास एक स्वर्णिम भविष्य है। उपन्यासकार के अनुसार ''संजय ने प्यार किया था सोनल को। यह प्यार किसी सड़कछाप टुच्चे युवक का दिलफेंक प्यार नहीं था इसमें गुणा–भाग भी था और जोड़–घटाना भी। जितना गहरा था, उतना ही व्यापक। वर्तमान समय में सच्चे प्रेम का अभाव है। विवाह केवल एक दिखावा है अपना स्वार्थ पूरा करने का, वैवाहिक जीवन में प्रेम कोरी भावुकता बनकर रह गया है प्रेम पर स्वार्थ हावी होता जा रहा है।

वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति में विवाहोत्तर त्रिकोणात्मक प्रेम दामपत्य जीवन में बढ़ता जा रहा है, प्रेम का यह रूप दामपत्य सम्बन्धों को तोड़ता जा रहा है। इसके टूटने का प्रमुख कारण है – पैसा, पैसा पाने की ललक पति–पत्नी के सम्बन्धों को कैसे तोड़ती है, इसका चित्रण इस उपन्यास में देखा जा सकता है। संजय को जब लगता है कि सोनल से उसके स्वार्थ की सिद्रि हो गई है तो वह उससे अमीर लड़की आरती गुर्जर जो एन०आर०आई० उद्योगपति की इकलौती संतान है, तो वह उसे प्रेम करने लगता है; ताकि वह उसके माध्यम से ओर आगे बढ़ सके। उनके प्रेम के बारे में सोनल को भी पता होता है, उपन्यासकार के अनुसार – 'आरती गुर्जर–उसके लैण्डलार्ड की बेटी। उसी कॉलसेन्टर में काम करती थी जिसमें संजय करता था, साथ आना–जाना उसकी कार से होता था। दिन–रात का साथ आश्चर्य यह था कि आरती के माँ–बाप उन्हें एक–दूसरे के करीब आते देख रहे थे फिर भी वे चुप थे। आश्चर्य यह भी था कि उनकी आँखो के सामने वे छेड़छाड़ करते थे –बेशर्मी की हद तक और टोकने पर हँसने लगते थे।

वर्तमान समय में वैवाहिक सम्बन्धों में विवोहत्तर त्रिकोणात्मक प्रेम बढ़ता जा रहा है। आधुनिक जीवन में स्त्री–पुरूष परम्परागत वर्जनाओं और बंधनों को स्वीकार नहीं करते। नैतिक–अनैतिक, पाप–पुण्य, अच्छाई–बुराई की मान्यताएँ आज बदल गई हैं। आज अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्रता एवं पैसे तथा अधिक–ऊँचाई पर बढ़ने की कोशिश वैवाहिक सम्बन्धों को तोड़ती जा रही है। जिसके लिए केवल आगे बढ़ना ही मुख्य है भले इसके लिए अपने किसी भी सम्बन्ध दर–किनारा करना पड़े।

सोनल को जब संजय के साथ अमेरिका में रहते हुए यह लगता है कि संजय केवल अपने बारे में सोचता है। उसके बारे में नहीं तो वह स्वयं ही अपेन जीवन के बारे में सचेत हो जाती है। 'यहाँ रहते हुए सोनल भी कमाई कर सकती थी। किसी

विश्वविद्यालय में, कॉलेज में, लाइब्रेरी में, कहीं भी! कम्प्यूटर में भी अच्छी खासी गति थी, लेकिन संजय ने जब में सोचा, खुद के बारे में सोचा, सोनल के बारे में सोचने की फुर्सत ही नहीं थी। उसने सोलन को 'हाउस वाइफ' से ज्यादा नहीं होने दिया और वह भी बनारस के इंतजार में 'आज कल परसो' करती रह गई थी।

भू–मण्डलीकरण की भारतीय नव–युवकों को एक विचित्र स्थिति देखने को मिलती है। एक ओर वे पुरानी व्यवस्थाओं में परिवर्तन चाहते है किन्तु दूसरी ओर वे अपने परम्परागत सांमतीय मूल्य को त्यागना भी नहीं चाहते। इसी सन्दर्भ में एक ओर ये चाहते है कि उनकी पत्नी अधिक से अधिक आधुनिक हो, किन्तु दूसरी ओर ये सांमतीमूल्य के आधार पर उस पर अपनी पूर्ण सत्ता को भी थोपना चाहते हैं दोनों व्यवस्थाओं को एक साथ स्वीकार करने के कारण उनके वैवाहिक जीवन में सामजंस्य स्थापित नहीं हो पा रह है। यह असंतुलन पारिवारिक जीवन में कलह के कारण वर्तमान समय में दाम्पत्य जीवन रागात्मकता के लिए छटपटाते हुए देखे जा सकते हैं, आर्थिक स्वतंत्रता, आधुनिक बोध, पाश्चात्य शिक्षा के कारण आज स्त्री में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आई है। इस कारण सोनल भी एक आधुनिक नारी है। वह भी आगे बढ़ने के लिए सोचने लगती है। उपन्यासकार के अनुसार – ''उसी दम उसने निर्णय लिया कि अब नहीं रूकना यहाँ। वह बहाने की ही खोज में ही थी कि राँची से पापा का ई–मेल तुरन्त आ जाओ, १५ को तुम्हारा इण्टरव्यू है। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। यह उसकी आत्मा की पुकार थी जो विश्वविद्यालय तक पहुँची थी।''

इस प्रकार जब सोनल को आरती–संजय की दोस्ती का पता चलता है तो वह भी अपने कॉलेज के दोस्त समीर के बारे में सोचने लगती है ''आज भोर के उजाले में खिड़की से फिर पुकार रही थी सोनल की आत्मा संजय को नहीं, समीर को सुनो, और चले आओ।''

यही से इस उपन्यास में पति–पत्नी के बीच सम्बन्ध विच्छेद की पद्धति देखने को मिलती है। प्राचीन भारतीय समाज में विवाह को एक अटूट बंधन माना जाता था। एक बार विवाह हो जाने पर पति–पत्नी को उनका निर्वाह करना ही पड़ता था, किन्तु समय के साथ समाज में जो परिवर्तन हुए, विचारों में जिस वैज्ञानिकता और तर्किकता का समावेश हुआ उसने इस मान्यता को स्वीकार करने से इंकार कर दिया है कि मृत सम्बन्धों को जबरदस्ती ढोते रहना अनिवार्य है। इस कारण वर्तमान समय में पति–पत्नी वैधानिक रूप से तलाक लेकर अलग–अलग रहने लगे है या बिना तलाक ही अपना जीवन बिता रहे है। सोनल को जब यह पता चलता है कि संजय ने आरती से विवाह कर लिया है तो वह थोड़े समय के लिए तो दु:खी होती है। किन्तु बाद में उसका स्वाभिमान जाग उठता है, सोनल को दु:ख इस बात का ज्यादा होता है कि वह उससे बिना पूछे तलाक बिना शादी कर लेता है, उसने सोनल के 'अहम्' को चोट पहुँचाई थी, वह कहती है तुम समझते क्या हो आपको? अरे तुम डाइवोर्स के लिए पूछा होता, 'हाँ' कर देती मैं। तुम नहीं देते कहते तो मैं दे देती। पूछा तक नहीं, ईशारा तक नहीं किया। बगैर डाईवोर्स के शादी कर रहे हो? अपमानित करके मुझे? बिना किसी गलती के, कसूर के! और बेशर्मी यह पूछने पर मुस्कुराते हुए बताते हुए बताते हो कि हाँ भई! कर ली! करनी पड़ी। मूर्ख समझते हो मुझे? जैसे मैं तुम्हें जानती ही न होऊ? जैसी तुम्हारी हरकतों से अनजान रही हूँ? मैं तो बच्चू, तुम्हारी खटिया खड़ी कर देती लेकिन क्या बताऊँ लोग यही समझेंगे कि मैं यह सब गुजारा भत्ता के लिए कर रही हूँ, जबकि मैं थूकती हूँ तुम्हारी कमाई पर।''

भू–मंडलीकरण के इस दौर में ऊँचाईयों तक पहुँचने की मारा–मारी, अधिक से अधिक धनोपार्जन की प्रवृत्ति, शिक्षा का प्रसार, व्यक्ति–स्वातंत्र्य तथा तर्किक दृष्टिकोण के कारण पति–पत्नी के बीच प्रेम के स्थान पर स्वार्थ, विवोहत्तर त्रिकोणात्मक प्रेम तथा सम्बन्ध–विच्छेद की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। पति–पत्नी के बीच सम्बन्धों में प्रेम, त्याग, विश्वास, कर्तव्यनिष्ठा, सहयोग जैसी भावनाएँ समाप्त हो चली हैं।

सास–सुसर–बहू के बीच सम्बन्ध

माता–पिता व संतान के सम्बन्धों की भाँति सास–सुसर और बहू के सम्बन्धों में भी परिवर्तन हो रहे हैं। नगरों के शिक्षित परिवारों में बहू शिक्षित होने के कारण अपने सास–सुसर के साथ उन्मुख वार्तालाप करती है। इसी प्रकार सोनल भी रघुनाथ–शीला से अपने माता–पिता समान वार्तालाप करती है। वह अपने सास–सुसर को अशोक विहार में अपने घर इस कारण बुलाती

है क्योंकि वहाँ आए दिन हत्या एवं चोरियाँ होती थीं। किन्तु फिर भी सोनल का व्यवहार अपने सास–सुसर से अच्छा रहा। सोनल शिक्षित होने के कारण स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है, वह अपने ऊपर किसी भी प्रकार अपने रहन–सहन के तौर तरीके में भी परिवर्तन एवं नियंत्रण को सहन नहीं कर सकती।

उदाहरणत: ''शीला दो बार बहू से दु:खी हुई। वह जग जाती थी और मैं चार बजे और सोनल सोती रहती थी आठ बजे तक। उसने उसे जगाने का एक तरीका निकाला। उसने सुबह छ: बजे चाय तैयार की और उसे जगाया। सोनल सोई रही और उठने पर ठंडी चाय सिंक में उडेल दी। फिर अपने लिए अलग से नींबू की चाय बनाई।

शीला देखती रही। दूसरे दिन उसने नींबू की चाय बनाई– थोड़ी देर से! यानि ७ बजे। उस दिन भी यही हुआ। सोनल ने कहा – ''मम्मी, मेरी चाय रहने दिया करें आप! जब उठूँगी, तब बना लूँगी मैं।

इस प्रकार सास–बहू के सम्बन्धों में भी शिक्षा का व्यापक प्रचार, पाश्चात्य जीवन शैली अपनाने एवं व्यक्ति स्वातंत्र्य से प्रभावित होने के कारण सम्बन्ध परिवर्तित हुए। रघुनाथ ने शीला–सोनल के झगड़ों के कारण को देखते हुए अपने रहन–सहन को सोनल के अनुसार ढ़ाल दिया। उपन्यासकार के अनुसार –''शीला की गलतियों से इन्होंने बहुत कुछ सीखा था। ये अपने हिसाब से उसे नहीं चलाते थे, उसके हिसाब से खुद चल रहे थे । इन्हें 'सुसर' की जगह 'बाप' बनकर चलना ज्याद सुविधाजनक लगा था। अव्वल को तनाव का कोई मसला पैदा ही न होने दो और पैदा भी हो तो गम खा जाओ या टाल जाओ।

इसी समझदारी ने ससुर और बहू को एक दूसरे का दोस्त बना दिया था। हो सकता है इसके पीछे कही न कहीं उनका अपना 'अकेलापन' भी हो गया और 'अब' भी।

इस प्रकार वर्तमान समय में शिक्षा के प्रभाव, आधुनिक जीवन शैली ने रहन–सहन के कारण सास–ससुर एवं बहू के सम्बन्धों में परिवर्तन आया है। आज भी युवा पीढ़ी की शिक्षित बहुएँ अपने ऊपर किसी भी प्रकार का नियंत्रण नहीं चाहतीं।

आज सास–ससुर, बहू का सम्बन्ध तब तक मित्र या बेटी के समान है, जब तक वह नई पीढ़ी के रहन–सहन अपना समझौता ना कर ले। आज की पुरानी पीढ़ी को बहु के साथ रहने के लिए अपनी खुशी का त्याग करना ही पड़ता है, भले ही उन्हें अब या अकेलापन का सामना करना पड़े। इस प्रकार सास–बहू के सम्बन्धों में जो सेवा–भाव निहित रहता था वह अब निरन्तर टूटता जा रहा है।

भाई–बहन का सम्बन्ध

वर्तमान युग उद्योग धंधों, तकनीकी और वैज्ञानिक विकास का युग है जीवन यंत्र–चलित और तेज रफ्तार से दौड़ने वाला हो गया है। पारिवारिक सम्बन्धों में भाई–बहन, भाई–बहन का सम्बन्ध प्रेम, त्याग, सौहार्द के लिए प्रसिद्ध रहा है; किन्तु समय की अर्थप्रधान व्यवस्था में भाई–बहन का 'सम्बन्ध' भी अर्थ के कारण प्रभावित हो रहा है। पहले भाई–बहन का सम्बन्ध में परस्पर प्रेम प्रगाढ़ बंधन से युक्त होता था, किन्तु जहाँ सम्बन्धों के बीच अर्थ आ जाता है वहा सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं। इस यथार्थ का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है तभी याद करता है जब धनंजय अपने भाई संजय को तभी याद करता है जब उसके पास पैसे नहीं होते। उसी प्रकार धनंजय भी सरला को तभी मिलने जाता है जब उससे पैसे लेने होते हैं।

धनंजय–संजय का अपनी बहन के प्रति सम्बन्ध प्रेम का नहीं है, उसी प्रकार सरला के मन में अपने भाईयों के प्रति स्नेह या मोह नहीं है। भीड़–भाड़ और व्यस्तजीवन में भाई–बहन, कोई बहन के सम्बन्ध स्वार्थ में परिवर्तित होने के साथ टूटते जा रहे हैं। व्यक्ति अपनी भाई–बहन के प्रति अजनबी बनता जा रहा है। वह इस कदर स्वार्थी हो गया है कि वह अपने बंधु, भाई–बहन के लिए त्याग, प्रेम, स्नेह की भावना को भूलता जा रहा है। इस प्रकार उपभोक्तवादी युग में व्यक्ति नितांत आत्म केन्द्रीय होता जा रहा है। वह केवल अपनी सुख–शान्ति तक सीमित रहता है। परिवार के सदस्य उसके लिए अजनबी एवं अपरिचित होते जा रहे है।

बुजुर्गों के प्रति परिवार के सदस्यों के सम्बन्ध

संयुक्त परिवारों में बुजुर्ग माता–पिता की सेवा अच्छी प्रकार से की जाती थी, किन्तु एकल परिवार विकसित होने के कारण उनकी स्थिति दयनीय होती जा रही है। औद्योगिकरण धर्मवादिता, स्वतंत्रता प्राप्त करने की भावना, शिक्षा का व्यापक प्रसार ने व्यक्ति को गाँवों से शहर और शहरों से विदेशों की तरफ आकर्षित किया है। शहरों में विदेशों की चकाचौंध ने युवा पीढ़ी को प्रभावित कर ऐसे व्यवसायों के लिए तैयार किया है जो उनके मूल स्थान में नहीं होता। अत: वे ऐसे लोग अपने परिवार से पृथक होकर वहाँ रहने लगते हैं, जहाँ उन्हें अपने सपने पूरे करने का मौका मिलता है। इस प्रकार मनुष्य केवल अपने बारे में सोचता है और जीवन में आगे बढ़ने के बारे में चिचिंत रहता है, जिन माँ–बाप ने उसे कर्ज लेकर पढ़ाया, यहाँ तक पहुँचाया वे उसके लिए आज की युवा पीढ़ी उदासीन हो चली है। यही स्थिति रघुनाथ–शीला की है, जिन बच्चों को उन्होने कठिनाईयों एवं संघर्षों से पढ़ाया था, वही बच्चे आज उनका सहारा बनने से इंकार कर देते है। संजय–धनंजय अपने–अपने जीवन में व्यस्त रहते है। सरला भी अपने माता–पिता का सहारा बनने की बजाय उनपर वृद्धावस्था का बोझ बन जाती है।

जब उसे अपने माता–पिता की आवश्यकता रहती है तो उन्हें अपने पास बुला लेती है। इसी प्रकार उनकी बहू सोनल भी अपनी वृद्ध सास से घर का काम–काज करवाती है। हर माता–पिता अपने यौवनावस्था में अपनी जरूरतों की कटौती कर अपने बच्चों की इच्छा एवं आवश्यकताओं को महत्व देते है उस समय हदय के किसी कोने में यह अभिलाषा होती है कि वह बच्चे वृद्धावस्था में उनकी लाठी बनेंगे। ऐसी ही अभिलाषा शीला के मन में भी थी, उदाहरणत: ''वे इतने और नि:स्वार्थ तो नहीं थे और उनकी उम्मीद भी उनसे अलग नहीं थी तो गाँव घर के थे, कि जब वे शशक्त हो जायेंगे तो ये बच्चे उनकी आँखे बनेंगे, उनके हाथ पाँव बनेंगे। कि वे बीमार होंगे तो यही बच्चे उनकी सेवा करेंगे, दवा दारू करेंगे, अस्पताल में भर्ती करायेंगे कि मरने लगेंगे तो मुँह में गंगा जल तुलसी डालेंगे, अर्थी सजाऐंगे, श्मशान ले जायेंगे, क्रिया कर्म करेंगे।

किन्तु वृद्र माता–पिता की यह अभिलाषा किस प्रकार टूटती है इसकी वास्तविकता इस कृति में सुनी जा सकती है। जब वृद्ध होने पर रघुनाथ को जीवन के यथार्थ के बारे में पता चलता है, और जब बच्चों को अपने माता–पिता से कोई प्रेम या उनके प्रति कृतज्ञ भावना नहीं होती तो रघुनाथ निराश होते हुए कहता है ''लेकिन जीवों तो इससे बड़ी मूर्खता क्या हो सकती है? और मरने के बाद सड़ो–गलो, कौवे–जीव–जन्तु खाएँ या बच्चे शहरों, विदेशों में रहने लगे है, अपने माता–पिता को अकेले छोड़कर चले जाते है। रघुनाथ के अनुसार ''संतोष करते है, इस प्रकार युवा पीढ़ी अपने वृद्ध माता–पिता के प्रति उदासीन होती जा रही है– बुजुर्गों के प्रति जो प्रेम, आदर, सम्मान, न्याय, कर्तव्य भावना का सम्बन्ध होता था वह अब लुप्त होता जा रहा है। सम्बन्ध स्वार्थ में परिवर्तित होने के साथ टूटत जा रहे है।

निष्कर्ष

इस प्रकार स्वतंत्रता के उपरान्त नए औद्योगिक परिवेश ने सामान्य व्यक्ति को अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास में और अधिक तीव्रता से संघर्ष में रहकर आजीविका कमाने, आय के स्रोत बढ़ाने तथा अपनी आर्थिक अभाव–ग्रस्तता को समाप्त करने की प्रक्रिया में पारिवारिक सम्बन्धों की समस्या और अधिक जटिल हो गई थी। इस नए परिवेश में सम्बन्धों की परिभाषा बदल गई है।

तरक्की और भौतिकता के पीछे भागते लोगों के अन्दर मानवीय संवेदनाएँ, सहानुभूतियाँ और आपसी सम्बन्धों में समर्पण के बजाय व्यावसाभिकता और स्वार्थी मानसिकता कार्य करती है। आधुनिक युग में पारिवारिक सम्बन्ध अर्थ की धूरी पर चक्कर काट रहे है। आत्मीयता तथा उससे उत्पन्न दया, ममता, स्नेह, श्रद्धा इन सब का मूल्य क्षीण हो गया है – आज का मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए किसी भी सम्बंध को सेतु बना सकता है, वर्तमान समय में सम्बन्धों में मात्र सतही–प्रेम दृष्टिगोचर होता है, महज अपने परिवार के सदस्यों, रिश्तों से इस स्तर तक कट गया है कि माता–पिता, भाई–बहन सब एक इशारे के लिए अजनबी एवं अपरिचित हो गए, व्यक्ति के अंधे स्वार्थ ने पारिवारिक सम्बन्धों में शिथिलता उत्पन्न की और उन्हें निर्जीव बना दिया।

आधुनिक युग का आदमी केवल अपनी आवश्यकताओं को पूरी करने के सन्दर्भ में विचार कर पाता है। दूसरों का दु:ख, कष्ट, मृत्यु इत्यादि में उसका कोई लेना देना नहीं है।

इस प्रकार रघुनाथ का परिवार भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जिसके माध्यम से भारतीय समाज के पारिवारिक सम्बन्धों में उभरते परिवर्तन को अधिव्यक्त किया गया है। परमपरागत रागात्मक सम्बन्धों का भाव किन भयावह परिणामों को जन्म दे रहा है, इन सभी की सफल अभिव्यक्ति इस उपन्यास से हुई है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

'रेहन पर रग्घू' –काशीनाथ सिंह

'इसी दुनिया में कभी हरा रंग भी होता था भाई, वह कहाँ गया ? – उमा अंकर चौधरी (आलोचना, जुलाई–सितम्बर २००८), पृष्ठ संख्या ८५

रेहन पर रग्घू, पृष्ठ संख्या २७

वही, पृष्ठ संख्या २७

वही, पृष्ठ संख्या १३०

वही, पृष्ठ संख्या ८९

वही, पृष्ठ संख्या ८९

वही, पृष्ठ संख्या ५४

वही, पृष्ठ संख्या १०५

वही, पृष्ठ संख्या ८९

वही, पृष्ठ संख्या १३३

वही, पृष्ठ संख्या १२३

वही, पृष्ठ संख्या २०

वही, पृष्ठ संख्या १०९

वही, पृष्ठ संख्या ११०

वही, पृष्ठ संख्या ११०

वही, पृष्ठ संख्या ११०

वही, पृष्ठ संख्या १३८

वही, पृष्ठ संख्या ११९

वही, पृष्ठ संख्या १२०

वही, पृष्ठ संख्या १४८

नगरीकरण और हिन्दी उपन्यास –क्षमा गोस्वामी

२१वीं सदी –मनोहर श्याम जोशी

२१वीं सदी के प्रथम दशक के हिन्दी उपन्यास – सतीश पटेल

१४ भारतीय उपन्यास – तुलसी नारायण सिंह

प्रेमचंद विचारधारा : परम्परा एवं परिदृश्य –ए०डी० शोरीकार

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,31-36**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 03 मार्च 2013

दिनकर की अपने समय के प्रति संवेदनशीलता

सारिका चौधरी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *दिनकर की अपने समय के प्रति संवेदनशीलता* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सारिका चौधरी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

''राष्ट्रकवि दिनकर की रचनाओं का यह वैशिष्ट्य है कि उनके माध्यम से तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक व अन्य परिस्थितियों का सही ज्ञान प्राप्त होता है। दिनकर ने अपने समय को भोगा है, जीया है और फिर अपनी संवेदना की कलम से उस समय को अपने काव्य में बाँधा है। समय से साक्षात्कार की उनकी यह पूरी प्रक्रिया इतनी गहन, जीवंत व संवेदना से भरी है कि इतने वर्षों उपरांत भी उनके काव्य आधुनिक समाज व राजनीति पर सटीक बैठते हैं। दिनकर ने जहाँ अपने देश के सामाजिक शोषण की सूक्ष्मताओं को बखूबी उकेरा, वहीं राजनीतिक पाखण्ड की बारीकियों को भी समझा। यहाँ हम उनकी सम–सामयिकता पर विचार करेंगे।''

कवि के रुप में दिनकर का साहित्य–क्षेत्र में अविर्भाव उस समय हुआ था जब भारतवर्ष में जमींदारों एवं पूँजीपतियों द्वारा कृषक वर्गों का शोषण और श्रमिकों का उत्पीड़न जोरों पर था। सामाजिक विषमता, जातिगत विभेद वैमनस्य, छुआ–छूत इत्यादि का विस्तृत साम्राज्य सर्वत्र फैला हुआ था। साथ ही समस्त भारत राष्ट्र को निर्बल, गौरवहीन बनाने की दृष्टि से विदेशियों का दमन–चक्र भी जोर–शोर से चल रहा था। जागरुक एवं सहृदय कवि दिनकर इन भीषण परिस्थितियों से भला कैसे अप्रभावित रह सकते थे? उन्होंने अपने काव्य में इन सम–सामयिक परिस्थितियों के जीवन्त चित्र उतारे हैं।

उनके इस प्रकार के काव्य का विश्लेषण हम दो खण्डों में कर सकते हैं – १. स्वतंत्रता से पूर्व सम–सामयिक काव्य, २. स्वतंत्रता उपरांत सम–सामयिक काव्य।

दिनकर राष्ट्रीय–परिप्रेक्ष्य में जब जो घटित होता रहा उसको अपने छंद में बाँधते रहे थे। चाहे वह सांप्रदायिक दंगा हो, स्वतंत्रता का आगमन हो, विनोबा जी का भू–दान आंदोलन हो, आज़ाद हिन्द फौज की बात हो, जनतंत्र का जन्म हो, गाँधी जी का महाप्रयाण हो, या चीन का युद्ध रहा हो। दिनकर ने अपने समय में इन सभी घटनाओं पर अपनी पैनी नज़र रखी और इन्हें अपने काव्य में स्थान दिया। उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता–संग्राम की विशिष्ट घटनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया को काव्यबद्ध किया और युगचारण कहलाये।

* शोध छात्रा, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरूपति (आन्ध्र प्रदेश) भारत। (पुनः प्रकाशन)

© लेखक 2017, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

दिनकर अपने युग की सभी समस्याओं से पूर्णत: अवगत हो रहे थे। अंग्रेजी दासता ने उन्हें राष्ट्र के प्रति समर्पण, त्याग, बलिदान सिखा दिया था। ''रेणुका'' में सम–सामयिकता से प्रेरित राष्ट्रीय काव्य में एक विशेष प्रकार के आवेग के सिद्ध करने का प्रयास कवि ने किया है जो कवि के अपने मनोभावों के उद्वेलन से अर्जित किया गया है जैसे – ''क्रांति–धात्रि कविते! जाग उठ/ आडम्बर में आग लगा दे/ पतन, पाप, पाखंड जलें/ जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे/ विद्युत की इस चकाचौंध में/ देख, दीप की लौ रोती है/ अरी, हृदय को थाम, महल के/ लिये झोपड़ी बलि होती है।''

यह कविता उस समय लिखी गयी जब परतंत्र भारत में किसान आंदोलन अपने पूरे उत्कर्ष पर था। इस कविता की सम–सामयिकता इसे विशेष महत्वपूर्ण बनाती है।

यह कविता तत्कालीन घटनाओं को केन्द्रित कर लिखी गई। इसमें देवघर (बिहार) में महात्मा गाँधी पर किये प्रहार का उल्लेख मिलता है इसीलिए सम–सामयिक है। दिनकर शोषित जनता को देख चीत्कार कर उठते हैं – ''जागो, विप्लव के वाक्। दम्भियों के इन अत्याचारों से,/ जागो, हे जागो तप–निधान! दलितों के हाहाकारों से। जागो, गाँधी पर किये गये नर पशु–पतितों के वारों से,/ जागो, मैत्री निर्घोष! आज व्यापक युग–धर्म पुकारों से।''

नि:संदेह युग की माँग थी जागृतावस्था का प्रक्षेपण करने की। युग की माँग थी अत्याचार, अनीति को दूर करने की। दिनकर ने इन माँगों की पुष्टि अपने काव्य के विभिन्न स्वरों में व्यक्त कर ब्रिटिश दमन–नीति को चुनौती दी। समय–समय पर आने वाली आँधियों ने कवि दिनकर को अपने साथ कर लिया। वे जीर्ण व पुरातन का ध्वंस कर नव–निर्माण का रुख अपना रहे थे। उन्होंने जो देखा, परखा, अनुभव किया, उसे ही शब्द दिया, अभिव्यक्ति में साकार किया। वस्तुत: दिनकर का समस्त काव्य अपने युग का दीपक जलाने के लिए ही लिखा गया है। उनके काव्य प्रारंभ से युगीन परिस्थितियों से प्रभावित रहे इसीलिए उनमें किसी भी प्रकार की कल्पना के दर्शन नहीं मिलते हैं। वास्तविकता को, यथार्थ को, तत्कालीन युगीन घटनाक्रम को ही उन्होंने अपने काव्य का आदर्श बनाया, अपने काव्य का मर्म बनाया और अपने युगधर्म को निभाया।

निराला और प्रेमचंद की भाँति उन्होंने भी अपने देश और समाज को कल्पना के रंगीन चश्मे से नहीं, अपितु यथार्थ की आँखों से देखा था। उन्होंने अपने समय, श्रम व प्रतिभा का अधिकांश उपयोग समयुगीन राष्ट्रीय जीवन की यथार्थमूलक ज्वलंत समस्याओं के चित्रण में किया है।

देश व समाज की जिंदगी की पीड़ा कवि का अपना दर्द बन गया है, दलित मिट्टी की जिंदगी उसकी जिंदगी बन गई है। इस जीवन और मिट्टी के भीतर छिपी पीड़ा कवि में परिस्थितियों के प्रति रोष पैदा करने वाली शोषक सत्ता, उच्चवर्गीय व्यवस्था तथा अन्याय अनीतियों को ध्वस्त करने की हलचल पैदा करती है। जहाँ जीवन इतना प्रतिकूल व अभिशप्त हो वहाँ का कवि निश्चिंत होकर प्रेम गीत कैसे गा सकता है? राष्ट्रीय आंदोलन को देखकर दिनकर ने अपने कर्त्तव्य–पथ को पहचाना। अपने समय की माँग के अनुरुप वे स्वयं राष्ट्र–यज्ञ में अपने प्राणों की आहुति के लिए तत्पर हो उठे – 'रण की घड़ी, जलन की बेला, तो मैं भी कुछ गाऊँगा। सुलग रही यदि शिखा यज्ञ की; अपना हवन चढ़ाऊँगा।''

कवि जानता था कि भारत जैसे कृषि प्रधान देश में किसानों के दु:खी होने का मतलब भारत देश का दु:खी होना है। इसीलिए वह अंग्रेजी शासन में कृषकों की दशा देख व्यथित हो गया और तत्कालीन हालात का वर्णन करता है – ''जेठ हो कि हो पूस, हमारे कृषकों को आराम नहीं है,/ छुटे बैल के संग, कभी जीवन में ऐसा याम नहीं है।''

दिनकर की सम–सामयिकता क़ाबिले ग़ौर है। सन् १९३५ ई० में रक्त पिपासु इटैलियन फासिस्टों के अबीसीनिया पर आक्रमण के अवसर पर प्रतिक्रियास्वरुप कवि का क्रोध दिखाई पड़ता है – ''सावधान हो निखिल दिशाएँ, सजग व्योमवासी सुरगण। बहने चले आज खुल–खुलकर लंका के उनचास पवन। हिले 'आल्पस' का मूल, किले 'राकी', छोटा जापान हिले,/ मेघ–रन्ध्र में बजी रागिनी, अब तो हिन्दुस्तान हिले।''

इस आक्रमण ने दिनकर की आत्मा को इतना झकझोरा कि वह अपने राष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं को भी भूल गया। दिनकर ने समयानुसार लिखा – ''काबुल' मूक, दूर 'यूरल' है, क्या भोली 'आमू' बोले? / उद्वेलित 'भूमध्य', स्वेज का मुख इटली कैसे खोले? / श्वेतानन स्वर्गीय देव हम! ये हब्शी रेगिस्तानी! / ईसा साखी रहें, ईसाई दुनिया ने बर्छी तानी।''

आजादी से पहले ही भारत–भूमि को खण्डित करने हेतु सांप्रदायिकता व विद्वेष की ज़हरीली भावना को भड़काने वालों को कवि दिनकर अत्यंत तिरस्कार की दृष्टि से देखकर उन्हें तीखे शब्दों में खरी–खोटी सुनाते हैं – ''चीथड़ों पर एक की आँखें लगीं,/ एक कहता है कि मैं लूँगा जबाँ,/ एक की जिद है कि पीने दो मुझे,/ खून जो इसकी रगों में है रवाँ।''

सन् १९३७ या ३८ ई० में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौता वार्ता विफल होने पर जो अव्यवस्था, सांप्रदायिकता, वैमनस्य, द्वंद्व की खाई बढ़ती जा रही थी, दिनकर ने उसकी व्यथा को बहुत गहराई से समझा था। उसी असफल समझौते ने उन्हें इस कविता की प्रेरणा दी जो तत्कालीन दोनों कौमों के फैसलों पर गहरा रोष व्यक्त करती है – ''मुस्लिमों, तुम चाहते जिसकी जबाँ,/ उस गरीबिन ने जबाँ खोली कभी? / हिन्दुओं, बोलो तुम्हारी याद में ,/ कौम की तकदीर क्या बोली कभी?

कुरुक्षेत्र सम–सामयिक काव्य है। द्वितीय विश्वयुद्ध तथा भारत में अंग्रेजी राज्य के अत्याचार–चक्र से उत्पन्न परिस्थिति का पर्यालोचन करके इस ग्रन्थ का ताना–बाना बुना गया है। विश्वयुद्ध का भयंकर नर–संहार कवि को युद्ध से विरत करता है, परन्तु अंग्रेजी अत्याचारों से पीड़ित भारतीय जन–समाज की मुक्ति के लिए उसे युद्ध अनिवार्य प्रतीत होता है। इन्हीं दो विचार –कगारों के मध्य 'कुरुक्षेत्र; की वाग्धारा प्रवाहित है।

भारत की तत्कालीन परिस्थिति में शांति, क्षमा, अहिंसा, दया आदि गुण निष्फल सिद्ध हो रहे थे, इसलिए कांग्रेस में भी उग्रदल की स्थापना हो गई थी जो सद्लक्ष्य–पूर्ति हेतु किसी भी साधन को अपनाना वैध समझता था। यह विश्वास प्रबलता प्राप्त कर रहा था कि ईंट का जवाब पत्थर से देने पर ही सामाजिक व्यवस्था रह सकती है। पुण्य क्या है? अहिंसा? नहीं – ''छीनता हो स्वत्व कोई, और तू/ त्याग–तप से काम ले यह पाप है। पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे/ बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है।''

राष्ट्रीयता के युगचारण दिनकर प्रारंभ से अखण्ड भारत के समर्थक रहे। स्वाधीनता संग्राम के सिपाहियों की तरह उन्होंने अखण्ड भारत पर बलिदान होने का संदेश दिया। उन्हें खण्डवादी नीति कभी नहीं सुहाई। अंग्रेजों की 'फोड़ो और राज्य करो' नीति द्वारा देश में समय–समय पर जो दंगे हुए, खून की नदियाँ बह गयीं – कवि इन सबका पूरी शक्ति से विरोध करता है। 'सामधेनी' में कवि भारत माँ की दो संतानों को लड़ते देख कराह उठता है। जब १९४६ ई० में 'नोआखली का दंगा' हुआ तो दिनकर ने एक कविता लिखी। 'हे मेरे स्वदेश' नामक इस काव्य में उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम सांप्रदायिक दंगों की भर्त्सना की है एवं युग की राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। कवि आजादी से पहले ही भाई–भाई में चल रहे बँटवारे से उद्विग्न हो जाते हें और कह उठते हैं – ''जलते हैं हिन्दू–मुसलमान भारत की आँखें जलती हैं,/ आने वाली आजादी की लो दोनों पाँखें जलती हैं।''

१५ अगस्त १९४७ ई० को जब बहुप्रतीक्षित आजादी मिली तो दिनकर का कवि मन झूम उठा और उसने तुरंत अपनी इस खुशी को बाँटने के लिए चारों दिशाओं में निमंत्रण भेजना शुरु कर दिया था – ''मंगल–मुहूर्त, रवि उगो, हमारे पल ये बड़े निराले हैं,/ हम बहुत दिनों के बाद विजय के शंख फूँकने वाले हैं। मंगल मुहूर्त तरुगण फूलों, नदियों अपना पय दान करो,/ जंजीर तोड़ता है भारत कि नारियों जय–जय गान करो।''

दिनकर ने एक आदर्श राष्ट्रकवि के रुप में स्वाधीनता का अलख जगाया और संग्राम को ओज स्वर प्रदान किया। स्वातंत्र्य –पूर्व उनके काव्य का मूल स्वर था – राष्ट्रदेवता का अभिनंदन। किंतु आजादी मिलने के बाद उन्होंने राजनीतिज्ञों, नेताओं व समाज सुधारने के बड़े–बड़े दावे करने वाले वंचकों की छद्म लीलाएँ देखीं, उनसे कवि का हृदय मर्माहत हो उठा। परतंत्रता –मुक्ति यज्ञ में मनसा–वाचा–कर्मणा भाग लेने वाले, जनतंत्र की भावभीनी अगवानी करने वाले, किंतु उसकी कमजोरियों, विकृतियों का दो टूक ढंग से पर्दाफाश करने वाले प्रथम कवि दिनकर ही हैं। 'धूप और धुआँ' कृति इस तथ्य की साक्षी है।

'धूप और धुआँ' का मूल स्वर जनवादी चेतना से जुड़ा हुआ है। भारत के भविष्य को लेकर कवि अभी भी संशय की स्थिति में है। वह एक ओर इस अमूल्य आजादी का स्वागत करता है तो दूसरी ओर वह आजादी की रक्षा हेतु चिंता भी व्यक्त करता है। कवि यह मानता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति से कहीं अधिक स्वतंत्रता की रक्षा का दुर्वह दायित्व सँभालना होगा। दिनकर का चुनौती से भरा यह उद्घोष उनकी तत्कालीन परिस्थितियों का सही चित्र दर्शाता है – ''आजादी नहीं चुनौती है यह बीड़ा कौन उठाएगा,/ खुल गया द्वार पर कौन देश को मंदिर तक पहुँचायेगा। है कौन हवा में जो उड़ते इन सपनों को साकार करे,/

है कौन उद्यमी नर जो इस खण्डहर का जीर्णोद्धार करे। मां का अंचल है फटा हुआ इन दो टुकड़ों को सीना है,/ देखें देता है कौन लहू दे सकता कौन पसीना है।''

दिनकर अपने समय के साथ–साथ चल रहे थे। जब, जैसी समय की माँग होती वह तुरंत अपना मंतव्य प्रकट करते थे। वह एक ओर भारत के स्वर्णोज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त हैं, दूसरी ओर शोषकों और नेताओं के प्रति क्षुब्ध हैं। अपने सामयिक बोध के रहते कवि एक ओर बलिदानियों की वंदना करता है, दूसरी ओर अपराधियों की भर्त्सना करने में संकोच भी नहीं करता है।

दिनकर का ध्यान अपने युग की इस जातिवाद की ज्वलंत समस्या पर गया जहाँ कुल और जाति व्यक्ति के विकास में बाधक या साधक बनते हैं। जाति–व्यवस्था के कारण जर्जर और जड़ित भारतीय समाज में योग्य और कर्मठ व्यक्तियों की उपेक्षा आम बात है। कर्ण इस प्रकार के उपेक्षित और पीड़ित जनों का आदर्श है। दिनकर ने कर्ण के चरित्र के माध्यम से अपने युग की व्यथा को वाणी देने की एक अच्छी काव्यात्मक कोशिश की है।

इसी प्रकार 'हक की पुकार' कविता का विषय है – वर्तमान शासकों का ग्रामीणों की दीनावस्था को विस्मृत कर विलास में विमग्न हो जाना। दिनकर अपने समय में घट रही घटनाओं के जानकार हैं। वे देखते हैं कि आजादी से पहले जो शासक–वर्ग जनता से वायदे करते नहीं थकते थे वही अब अपने दिए वचनों को भूलकर निजी भोग–विलास में निमग्न हो प्रजा का खुलेआम शोषण कर रहे हैं। शहीदों का खून पुकार कर कहता है, क्या यही उनका हक है? जिस आजादी की खातिर हमने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया उसका इतना दुखद परिणाम क्यों?

वस्तुत: ''नीम के पत्ते'' में दिनकर ने अपने हृदय की उस कड़वाहट को व्यक्त किया है जिसका अनुभव आजादी के बाद प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति कर रहा था। अधिकारियों और व्यापारियों का नैतिक पतन देशभर में व्याप्त हो गया था।

सन् १९४५ में बिहार में भीषण मलेरिया और हैजा के प्रकोप से जब हजारों जानें अकाल मौत की शिकार हो गई तो कवि ने ''मैंने कहा, लोग यहाँ तब भी हैं मरते'' कविता लिखकर जनता की दयनीय अवस्था, शासक वर्ग की निर्दयी उदासीनता एवं अपने सम–सामयिक बोध का परिचय दिया है।

स्वराज्य प्राप्ति के पूर्व तक दिनकर जी ने जीवन के अंतर्राष्ट्रीय पक्ष पर बल नहीं दिया था। किंतु आजादी के बाद उन्होंने राष्ट्रीयता के संकुचित दायरे से उठकर अंतर्राष्ट्रीयता की दृष्टि से विचार करना ही उपयुक्त समझा। 'राष्ट्रदेवता के विसर्जन' में कवि राष्ट्रवाद के दुर्बल पक्ष को विसर्जित करता है और राष्ट्रीयता की सीमाओं को तोड़कर अंतर्राष्ट्रीयता के खुले आकाश में विचरण करने लगता है – ''खण्ड–प्रलय हो चुका, राष्ट्रदेवता! सिधारो,/ क्षीरोदधि को अब प्रवाह जग का धोने दो। महानाग फण तोड़ अमृत के पास झुकेगा,/ विषधर पर आसीन विष्णु–नर को होने दो।''

इसी श्रृंखला में 'परशुराम की प्रतीक्षा' भारत–चीन युद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी गई वीरता तथा ओज से परिपूर्ण कविताओं का संग्रह है जो अपने समकालीन संदर्भों से जुड़े होने तथा वर्तमान समस्याओं से गहरा सरोकार रखने के कारण विशेष रुप से महत्वपूर्ण बन गया है। 'दिनकर' की ये ओजस्वी कविताएँ युद्धकालीन समस्त विसंगतियों को उद्घाटित कर देती हैं और आजाद हिंदुस्तान की सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियों की वास्तविक तस्वीर खींचकर रख देती हैं।

दिनकर इस चीनी आक्रमण के दोषियों को जानते थे, इसलिए उन्होंने तत्कालीन शासकों पर तीखा प्रहार करते हुए उनकी पोल खोली है – ''घातक है, जो देवता–सदृश दिखता है,/ लेकिन, कमरे में गलत हुक्म लिखता है। जिस पापी को गुण नहीं; गोत्र प्यारा है,/ समझो, उसने ही हमें यहाँ मारा है।''

उस समय जो देश या व्यक्ति शांति–शांति की दुहाई देते थे, दिनकर ने उनकी तीखी आलोचना की है क्योंकि उन शांति की दुहाई देने वाले नेताओं के कारण ही पड़ोसी देश चीन ने 'हिन्दी–चीनी भाई–भाई' नारे का न केवल मखौल उड़ाया बल्कि भारत की मित्रता की पीठ पर छुरा भी घोंप दिया था; इसीलिए नेहरू के शांतिवाद पर वह व्यंग्य करते हैं – ''जब आंतिवादियों ने कपोत छोड़े थे,/ किसने आशा से नहीं हाथ जोड़े थे?/ पर, हाय, धर्म यह भी धोखा है, छल है;/ उजले कबूतरों में भी छिपा अनल है। पंजों में इनके धार धरी होती है,/ कइयों में तो बारुद भरी होती है।''

शांति के सफेद कपोत उड़ाने वाले नेहरु पर भी कवि ने बड़ी तल्ख टिप्पणी की है, क्योंकि कवि को यह खेद था कि सीमा पर हमारे जवान शहीद होते रहते हैं और नेता दूर बैठे शांति के कबूतर उड़ाते हैं। यदि वास्तव में ही शांति है तो युद्ध और हिंसा क्यों है?

''अब मत लेना नाम शांति का,/ जिह्वा जल जायेगी,

देश की यथार्थ स्थिति का वर्णन दिनकर की भिन्न–भिन्न कविताओं में बिखरा पड़ा है किंतु 'एनार्की' और 'समर शेष है' कविता में देश के स्वांगपूर्ण यथार्थ का स्पष्ट चित्र हमें दिखाई देता है। अपनी इस कविता में कवि ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में तत्कालीन भारत में व्याप्त आपाधापी व भ्रष्टाचार का उद्घाटन किया है। आजादी के इन बीस–पच्चीस वर्षों में हमारे राजनीतिक कर्णधार किस प्रकार भ्रष्ट होते गए हैं तथा व्यापारी वर्ग किस तरह गरीबों के शोषण पर अपनी पूँजी बढ़ा रहा है, इन सबका प्रामाणिक उद्घाटन दिनकर ने इसमें किया है।

दिनकर स्वातंत्र्योत्तर भारत की अराजकता, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, जातिवाद, आर्थिक शोषण, अनुशासनहीनता, उच्छृंखलता और स्वेच्छाचारिता के प्रति चिंतित व दु:खी थे, इसीलिए जब राज्य की संपत्ति का व्यक्तिगत समृद्धि के लिए दुरुपयोग किया जाता है तो दिनकर स्पष्ट लिखते हैं – ''अरे, अरे, दिन – दहाड़े ही जुल्म ढाता है। रेलवे का स्लीपर उठाये कहाँ जाता है?/ ''बड़ा बेवकूफ है, अजब तेरा हाल है;/ तुझे क्या पड़ी है? य' तो सरकारी माल है।''

तत्कालीन भारत के यथार्थ चित्रण में दिनकर ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी है क्योंकि वो यह देख कर स्तब्ध है कि देश में न तो नागरिक ही अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं; न शासक ही। हर व्यक्ति आजादी के नाम पर स्वच्छंद और उच्छृंखल हो गया है.. नियमों की अवेहलना सबसे बड़ा धर्म बन चुका है। शासन–सूत्र भी इतना ढीला पड़ चुका है कि जनता न तो पुलिस से भय खाती है, न किसी राज्याधिकारी से। स्वतंत्रता के असली अर्थ को न समझते हुए आजादी के नाम पर राष्ट्र विरोधी व अनैतिक कार्य होते हैं। दिनकर ने उस समय की बिगड़ती व्यवस्था का चित्र खींचा है – 'सुनता न कोई फ़रियाद है। देखिये जिसे ही, वही ज़ोर से आज़ाद है।'

'समर शेष है' कविता में कवि की आत्मा भारत की दुर्दशा को देख तड़प उठी है। कवि को महसूस होता है कि विदेशी शासकों से तो हमने लड़ाई जीत ली, किन्तु फिर भी हमारा संघर्ष अभी भी जारी है, क्योंकि देश के भीतर के शत्रुओं को मारना अभी बाकी है। उस विषम परिस्थिति में कवि प्रश्न करता है – ''कुंकुम? लेपूँ किसे? सुनाऊँ किसको कोमल गान? तड़प रहा आँखों के आगे भूखा हिन्दुस्तान।''

दिनकर ने अपने समय को टटोला और पाया कि अभी तो देश अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। असमानता की खाई ने राष्ट्र की संवेदना को पंगु बना दिया है। ईमानदार व सभ्य आदमी का जीना नामुमकिन –सा हो गया है, इसीलिए वह कहते हैं – ''समर शेष है, अभी मनुज –भक्षी हुंकार रहे हैं। गांधी का पी रुधिर, जवाहर पर फुंकार रहे हैं।

यह पंक्तियाँ तब लिखी गई जब जवाहर लाल नेहरू पर एक व्यक्ति ने छुरा चलाने की कोशिश की थी। स्वातंत्र्योत्तर भारत के राष्ट्रीय जीवन की धड़कने इस काव्य पुस्तक में सुनाई पड़ती हैं। कवि देश की समकालीन परिस्थितियों से अत्यंत क्षुब्ध है। हमारे जीवन व समाज की कड़वी वास्तविकता के परिपेक्ष्य में राष्ट्र के आहत स्वाभिमान का अंधकार इस काव्य–पुस्तक में चतुर्दिक फैला है जो भारत के इतिहास की दुर्भाग्य पूर्ण धरोहर ही है।

दिनकर ने समय–समय पर अपने विचारों में पर्याप्त परिवर्तन किया। उन्होंने युद्ध की बात की तो समय आने पर प्रेम भी व्यक्त किया। उन्होंने अपने काव्य को क्रांति के नूपुरों से झंकृत किया तो मन को तृप्त करने वाली शांति की भी बात की, इसीलिए वह सम–सामयिक भी रहे और प्रासंगिक भी बने।

संदर्भ ग्रन्थ

दिनकर की साहित्य दृष्टि – डॉ० (श्रीमती) सुशीला मिश्रा, प्रकाशन – अनुपम प्रकाशन, पटना
आधुनिक हिन्दी साहित्य की मानवतावादी भूमिकाएँ –डॉ० देवेश ठाकुर, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
अपने समय का सूर्य दिनकर –मन्मथनाथ गुप्त, आलेख प्रकाशन, दिल्ली

दिनकर काव्य में युगचेतना – डॉ० पुष्पा ठक्कर, अरविन्द प्रकाशन, बम्बई
दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना – डॉ० शिवाकांत गोस्वामी, प्रगति प्रकाशन, आगरा

पत्र–पत्रिकायें

हिन्दुस्तान
दैनिक जागरण
राष्ट्रीय सहारा
त्रैमासिक पत्रिका –इन्द्रप्रस्थ भारती (हिन्दी अकादमी)
मासिक पत्रिका –साहित्य अमृत सं०– त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008 भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,37-40**
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777 प्रकाशनार्थ स्वीकृत 25 मई 2016

ब्रिक्स (BRICS) देशों में भारत के आर्थिक विकास का तुलनात्मक परिदृश्य

डॉ० शिखा दीक्षित*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *ब्रिक्स (BRICS) देशों में भारत के आर्थिक विकास का तुलनात्मक परिदृश्य* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *शिखा दीक्षित* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

आर्थिक विकास के उद्देश्यों में से एक उद्देश्य वहाँ जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना होता है। मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार ब्राजील, रूस, चीन और दक्षिण अफ्रीका में भारत की स्थिति मानव सूचकांक के आधार पर मात्र दक्षिण अफ्रीका से श्रेष्ठ है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी भारत काफी पीछे है। अत: भारत को अपनी स्थिति श्रेष्ठ करने के लिये सदस्य देशों से विकास के इस अन्तराल को कम करना होगा।

किसी भी देश के आर्थिक विकास का लक्ष्य वहाँ के निवासियों के लिये बेहतर स्वास्थ्य सेवा को उपलब्ध कराना, शिक्षा की व्यवस्था करना, एक ऐसा वातावरण तैयार करना होता है जहाँ वे अपने सामाजिक जीवन की गतिविधियों में उत्साह पूर्वक भाग ले सकें। विकास एक सतत् चलने वाली प्रक्रिया है जो विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों के श्रृंखलाबद्ध प्रभाव पर निर्भर करती है। इस क्षेत्र में स्वास्थ्य क्षेत्र भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इस क्षेत्र पर किया गया व्यय एक तरह से पूँजीगत व्यय होता है जो मानवीय पूँजी की कुशलता में वृद्धि करता है। दूसरी महत्वपूर्ण कड़ी शिक्षा है जो मानव के सामाजिक और आर्थिक स्थिति में परिवर्तन का आधार बनती है।

ब्रिक्स में सम्मिलित पाँचों देश– ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका २१वीं सदी की तेजी से आगे बढ़ती हुयी अर्थ व्यवस्थायें हैं। अत: भारत के आर्थिक विकास की स्थिति का इस समूह के अन्य देशों की तुलना में अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

ब्रिक्स का गठन कच्चे माल, निर्मित वस्तुओं और सेवाओं का विश्व में २०५० तक प्रधान पूर्ति कर्ता बनने के लक्ष्य से किया गया जिसका सिद्धान्त एक अभिनव भविष्य के लिये आर्थिक समृद्धि था। इस परिवर्ती शब्द (Acuarium) का निर्माण २००१ में अर्थशास्त्री जिम ओनील ने किया था। पहला ब्रिक्समिट २००९ में रूस में आयोजित हुआ।

* एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, जगत तारन गर्ल्स डिग्री कॉलेज (सम्बद्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय) इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2017, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ब्रिक्स (BRICS) देशों में भारत के आर्थिक विकास का तुलनात्मक परिदृश्य

ब्रिक्स का उद्देश्य सभी सदस्य देशों के मध्य आर्थिक सहयोग, राजनीतिक एवं सुरक्षात्मक सहयोग के द्वारा सभी देशों में आर्थिक विकास के उच्च स्तर को प्राप्त करना है। आर्थिक विकास के उच्च स्तर हेतु मानवीय विकास अति आवश्यक है जिसे मानव विकास सूचकांक द्वारा मापा जाता है।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा २०१६ मानव विकास रिपोर्ट में ब्रिक्स देशों की स्थिति निम्नवत है –

तालिका– १ अन्तर्देशीय मानव विकास सूचकांक

देश	२०१२	२०१३	२०१४	२०१५
ब्राजील	०.७३०	०.७४४	०.७५५	०.७५४
रूस	०.७८८	०.७७८	०.७९८	०.८०४
भारत	*०.५५४*	*०.५८६*	*०.६०९*	*०.६२४*
चीन	०.६९९	०.७१९	०.७२७	०.७३८
दक्षिण अफ्रीका	०.६२९	०.६५८	०.६६६	०.६६६

स्रोत : मानव विकास रिपोर्ट २०१३, १४, १५, १६

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि ब्रिक्स देशों में भारत मानवीय सूचकांक मूल्य के आधार पर सबसे नीचे पायदान पर है। यद्यपि इसमें २०१२ से २०१३ में वृद्धि हुई है परन्तु यह वृद्धि अन्य देशों की तुलना में बहुत महत्वपूर्ण नहीं है।

तालिका– २ ब्रिक्स देशों का मानवीय विकास सूचकांक के आधार पर विश्व में स्थान

देश	२०१२	२०१३	२०१४	२०१५
ब्राजील	८५	७९	७५	७९
रूस	५५	५७	५०	४९
भारत	*१३६*	*१३५*	*१३०*	*१३१*
चीन	१०१	९१	९०	९०
दक्षिण अफ्रीका	१२१	११८	११६	११९

स्रोत : मानव विकास रिपोर्ट २०१३, १४, १५, १६

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि रूस और चीन को छोड़कर २०१५ के सूचकांक के आधार पर शेष देश स्थान की दृष्टि से नीचे स्थान पर पहुँच गये। चीन का स्थान यथावत रहा जो इस अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता को इंगित करता है।

ब्रिक्स देशों में स्वास्थ्य सम्बन्धी स्थिति को निम्न तालिका से स्पष्ट कर सकते हैं।

तालिका– ३ स्वास्थ्य परिणाम

देश	६० वर्श आयु पर जीवन प्रत्याषा वर्ष	चिकित्सक प्रति १०००० व्यक्तियों पर	सार्वजनिक स्वास्थ्य पर व्यय GDP के %में
	२०१०/२०१५[b]	२००१–२०१४[a]	२०१४
ब्राजील	२१.३	१८.९	३.८
रूस	१८.४	४३.१	३.७
भारत	*१७.७*	*७.०*	*१.३*
चीन	१९.४	१९.४	३.१
दक्षिण अफ्रीका	१६.१	७.८	४.२

स्रोत : मानव विकास सूचकांक रिपोर्ट, २०१६

a. उल्लिखित समयावधि में हाल के वर्षों में उपलब्ध आँकड़ा।

b. २०१०–२०१५ में अनुमानित मूल्य का वार्षिक औसत।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत में ब्रिक्स के अन्य देशों की तुलना में चिकित्सकों की उपलब्धता प्रति हजार पर और सार्वजनिक स्वास्थ्य पर किया व्यय सबसे कम है। मानव विकास में चिकित्सा सुविधा का महत्वपूर्ण स्थान होता है और जब तक सुविधा समुचित रूप से उपलब्ध नहीं होगी तब निश्चित ही देश इस सूची में पीछे रह जायेगा।

शिक्षा–क्षेत्र में स्थिति

शिक्षा के क्षेत्र में भारत की स्थिति भी अन्य देशों की तुलना में बहुत अच्छी नही है। इसे निम्न तालिका से समझा जा सकता है–

तालिका– ४ स्कूली शिक्षा प्राप्ति के प्रत्याशित वर्ष

देळा	२०१२[a]	२०१४	२०१५[a]
ब्राजील	१५.२[q]	१५.२[u]	१५.२
रशियनफेडरेशन	१४.०	१४.७	१५.०
भारत	११.७	११.७	११.७
चीन	१२.९	१३.१	१३.५
दक्षिण अफ्रीका	१३.१[p]	१३.६	१३.०

स्रोत: मानव विकास रिपोर्ट, २०१४, २०१५, २०१६

a. २०१४ का अद्यतन उपलब्ध वर्ष का आँकड़ा

q. २०१२ का अद्यतन वर्षों का उपलब्ध आँकड़ा

p. क्रास कन्ट्री रिग्रेशन पर आधारित

u. HDRO की गणना पर आधारित ब्राजील के नेशनल इन्स्टीट्यूट फॉर एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट

उपरोक्त तालिका–४ से स्पष्ट है कि भारत में औसतन शिक्षा के वर्ष मात्र ११.७ है जो कि अन्य देशों की तुलना में सबसे कम है। शैक्षिक स्थिति को सेकेण्डरी शिक्षा प्राप्त जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में भी देखा जा सकता है जहाँ लैगिंग असमानता का परिदृश्य भी सामने आता है।

तालिका– ५ सेकेण्डरी शिक्षा प्राप्त जनसंख्या (२५ वर्ष या अधिक आयु प्राप्त जनसंख्या का %)

देश	महिला २००५–१५[a]	पुरूष २००५–१५[a]
ब्राजील	५९.१	५५.२
रशियनफेडरेशन	९४.६	९४.७
भारत	*३५.३*[b]	*६१.४*[b]
चीन	६९.८	७९.४
दक्षिण अफ्रीका	७३.७	७६.२

स्रोत : मानव विकास रिपोर्ट २०१६

a. उल्लिखित समयावधि में सबसे अधिक हाल के वर्ष

b. बोरो एवंली (२०१३) की UNESCO के आँकड़ों के आधार पर गणना

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत में शिक्षा की स्थिति अत्यन्त ध्यान देने वाली है। इस तालिका से महिलाओं की स्थिति भारत में अत्यधिक सोचनीय है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि मानव विकास सूचकांक की दृष्टि से अपनी स्थिति सुधारने हेतु भारत को स्वास्थ्य क्षेत्र पर विशेष ध्यान देना होगा। इस हेतु सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यय को बढ़ाना होगा, स्वास्थ्य हेतु आवश्यक आधारभूत संरचना की उपलब्धता बढ़ानी होगी। मात्र उपलब्धता बढ़ाकर हम लम्बी–जीवन प्रत्याशा और अच्छे स्वास्थ्य स्तर को प्राप्त नहीं कर सकते

जब तक कि उपलब्ध सुविधाएँ जन–सामान्य के लिये उनकी भुगतान क्षमता को ध्यान में रखकर किफायती मूल्य पर उपलब्ध न करा दी जाये। अत: विश्वस्तरीय स्वास्थ्य सुविधाओं को जन–सामान्य के लिये बिना किसी भेद–भाव के प्रदान करना होगा तभी भारत भी अन्य ब्रिक्स देशों के बराबर पहुँच पायेगा।

इसी प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि यदि भारत को ब्रिक्स देशों में अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु शिक्षा तथा स्वास्थ्य क्षेत्र में विशेष ध्यान देना होगा और ये सुविधाएँ प्रमुख रूप में पुरूष एवं महिला दोनों के लिए उपलब्ध करानी होगी। यद्यपि १९८८ में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन का प्रारम्भ हुआ जिसका लक्ष्य २००७ तक ७५ प्रतिशत साक्षरता प्राप्त करने का था, २००१ में सर्वशिक्षा अभियान प्रारम्भ हुआ, मिड–डे–मील की व्यवस्था हुयी और शिक्षा का विस्तार हुआ, इसकी माँग भी बढ़ी परन्तु भारत में आधारभूत संरचना की कमी इस क्षेत्र के विकास में एक बड़ी बाधा के रूप में सामने आयी जो वर्तमान में शिक्षा की बढ़ती हुयी माँग को पूरा करने में असमर्थ रही है। अत: इस हेतु सरकार को शिक्षा व्यवस्था हेतु आवश्यक आधारभूत संरचना के निर्माण पर विशेष ध्यान देना होगा।

संदर्भ सूची

Human Development Report (UNDP), 2013
Human Development Report (UNDP), 2014
Human Development Report (UNDP), 2015
Human Development Report (UNDP), 2016
ROUT H.S. (2010); *Human Development in India : Challenges and Policy,* New Century Publications, New Delhi India.

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,41-44**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 04 नवम्बर 2013

आतंकवाद भगवान महावीर या महाविनाश

डॉ० संगीता जैन*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *आतंकवाद भगवान महावीर या महाविनाश* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *संगीता जैन* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

हिंसा शब्द नकारात्मक है। हिंसा हमारे स्वभाव में नहीं होती, इसे पाना पड़ता है, इसे अर्जित करना पड़ता है। अत: हिंसक होने हेतु हमें कुछ न कुछ करना पड़ता है। वास्तव में हिंसा हमारी खोज हैं, हमारी उपलब्धि है। यदि हम अपने जीवन से, अपने आचरण से हिंसा को निकाल दें तो जो शेष बचेगा वह होगी अहिंसा।

कोई भी मनुष्य स्वभाव से हिंसक नहीं होता और न ही वह चौबीस घण्टे हिंसक रह सकता हैं। हिंसा किसी न किसी कार्य हेतु–किसी न किसी धैर्य हेतु–उसकी पूर्ति हेतु ही की जाती है। मनुष्य अपने उद्देश्य को पाने के लिए, सब प्रकार के हथकंड़े, अमानवीय तरीके प्रयोग में लाता है और इसी से आतंक का जन्म होता है, भय फैलता है। अपने अमानवीय उद्देश्यों को भय, आतंक द्वारा फलीभूत करना ही आतंकवाद है।

यदि किसी एक व्यक्ति को (हिन्दु या मुसलमान) को आप कहें कि मन्दिर/ मस्जिद को आग लगा दें तो वह पच्चास बार सोचेगा कि यह अमानवीय कृत्य है– यह पाप है, मुझे ऐसा नहीं करना चाहिये– किन्तु यदि ५००–१००० व्यक्तियों का समूह हो– और उन्हें कहा जाये तो कोई एक बार भी नहीं सोचेगा– बस बात धर्म की हो गई– धर्म के हित की हो गई। धार्मिक उन्मान का, धार्मिक आतंकवाद का जन्म हो गया।

आतंकवाद, यदि हम देखें तो कोई नयी घटना नहीं है। यह विश्व में सदा से विराजमान रही है। शक्तिशालियों का आतंकवाद सदा से हथियार रहा है। वह जो उन्हें चाहिये उसे पाने हेतु–हर प्रणाली का प्रयोग करेंगे– बस उन्हीं का कार्य सिद्ध होना चाहिये। लोगों में डर–खौफ पैदा कर, अपने कार्य सिद्धि ही उनका उद्देश्य होता है।

इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज के अनुसार ''आतंकवाद के द्वारा एक संगठित समूह, या दल हिंसा के क्रमबद्ध उपयोग द्वारा अपने सुनिश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है। मृत्यु और विनाश उसकी योजना के अंग होते है।''

हमारा इतिहास अपने आपमें गवाह है कि मुगल–शासन में चंगेखाँ, नादिरशाह और औरंगजेब जैसे क्रूर लोगों ने जनता को आतंकवाद से किस हद तक पीड़ित किया। आज राजनैतिक, सामाजिक, दार्शनिक, धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु आतंकवाद

* रीडर, एडवांस्ड इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, पलवल (हरियाणा) भारत। (पुनः प्रकाशन)

© लेखक 2017, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

को अपनाया जा रहा है, उसे बढ़ावा दिया जा रहा है। आतंकवाद ने आज समस्त विश्व को अपने जाल में फंसा लिया है। आतंकवाद मनुष्य जाति के लिए एक अभिशाप, एक चुनौती बन गया है।

११/०९/२००१ सर्वशक्तिमान, सर्वसम्पन्न अमेरिका के ट्रेड सैन्टर पर आतंकी हमला, २६/११/०८ भारत के औद्योगिक नगर पर आक्रमण, भारत की पार्लियामेंन्ट पर आक्रमण, पाकिस्तान द्वारा– पृथ्वी के स्वर्ग कश्मीर में आतंकवाद का फैलाव, यह सब आतंकी घाव हैं, जो भूले नहीं भूलते। इन्हें याद कर आज भी मन कांप उठता है।

आखिर इस आतंकवाद से क्या अभिप्राय है, इसका क्या कारण है, इस का मनोविज्ञान क्या है? कैसे यह लोग अपने आपको संगठित रख पाते है। कौन–सी ताकत, कौन–सी भावना, कौन–सा मनोबल इन्हें आपस में एक बनाये रखता है– संगठित रखता है। मनोवैज्ञानियों के अनुसार मुख्य रूप से तीन तत्व आतंकवाद को जीवित रखते है – (१) धर्म, (२) भाषा, (३) जाति।

आतंकवाद को इन्हीं तीन तत्वों से प्राण–वायु मिलती है।

गाँधी जी को एक अमरीकन ने पत्र लिखा कि आप गीता को बड़ा मान देते है– क्या आप मुझे हिन्दू हो जाने की आज्ञा देंगे। गाँधी जी ने उत्तर दिया– कि मैं किसी को यह नहीं कह सकता कि वह हिन्दू बन जाये। यदि आप मुसलमान हैं तो एक अच्छे मुसलमान बनें, यदि क्रिश्चिन है तो एक अच्छे क्रिश्चिन बनें, जैन है तो अच्छे जैन बनें। अच्छों के बीच कोई अन्तर नहीं होता– सब अन्तर बुरे में बुराई के मध्य होता है। मन्दिर, मस्जिद, चर्च, गुरूद्वारा में अन्तर बुरे लोगों की देन है। संप्रदायिकता का जहर चन्द बुरे लोगों की, नेताओं की देन है। संसार में हजारों दीये है, उनसे ज्योति एक ही प्रगट होती है। धर्म किसी की बपौती नहीं। प्रत्येक व्यक्ति की निजी उपलब्धि है।

हिंसक प्रवृति जन्मजात है; प्रत्येक मनुष्य में सुंप्त अवस्था में विराजमान है जैसे ही व्यक्ति को बाह्य कारण उत्तेजित करते है, वह इस हिंसक प्रवृति को अभिव्यक्त करने लगता है।

आपने कभी ख्याल किया–कि बच्चे कभी–२ चलते कीड़े को पकड़ कर मार डालते है, किसी फूल को तोड़ कर मसल देते है। यह जिज्ञासा गहरे में वायलेंस को दर्शाती है। एक वैज्ञानिक है, उसकी प्रयोगशाला में कितने चूहे मार जा रहे है। कितने मेंढ़कों को, कितने खरगोशों को काटा जा रहा है। कितने ही अन्य जानवरों को पीड़ित किया जा रहा है। मानसिकता, मनुष्य कल्याण हेतु दर्शाई जाती है। हिंसा ने अहिंसा की चादर औढ़ ली है–कि सब ठीक हो रहा है।

भगवान महावीर का संदेश 'जीओ और जीने दो''। महावीर चलते समय भी देख कर चलने को कहते है– विवेकपूर्ण चलो, कहीं कोई चींटी तुम्हारे पैर के नीचे न आ जाये। यह 'अदर ओरियेंटेड काशसनेस' है। उनका मानना है कि चींटी में और आप में शारीरिक अन्तर है, चेतना के तल पर हम सब एक है। हम कैसे अपने स्वयं के ऊपर अपना पैर रखते है– यह असंभव है।

शिक्षा शास्त्री यह मानते है कि हर मनुष्य के अन्दर एक शैतान, एक खलनायक बैठा है। आतंकवादी हिंसा, व्यवहार, उनके अन्दर जन्मजात छिपा है जो समय आने पर हांवी हो जाता है। डोलार्ड, डूब, मिलर, मावरर तथा सियर्स (१९३९) के अनुसार आक्रामकता सदैव किसी कुण्ठा का परिणाम होती है और कुण्ठा सदैव आक्रामकता को जन्म देती है।

फ्रायड (१९५७) के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में दो तरह की मूल–प्रवृत्ति पाई जाती है –जीवन मूल प्रवृत्ति (इराँस) तथा मृत्यु– मूलप्रवृत्ति (थैनेटॉस)। जीवन– मूलप्रवृत्ति के मनुष्य रचनात्मक कार्य करने हेतु प्रेरित होते है– जब की मृत्यु–मूल प्रवृत्ति के मनुष्य विध्वंसात्मक, आक्रमण करने में अग्रसर रहते है। मृत्यु–मूल प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति की दिशा अर्न्तमुखी या बाह्यमुखी हो सकती है। यदि दिशा अन्तर्मुखी है तो मनुष्य आत्महत्या जैसे घिनौने पापों की और आकर्षित होता है और यदि यह बार्हिमुखी है तो दूसरे व्यक्तियों के प्रति व्यवहार आक्रामक, आतंकी होगा। अपनी स्वयं की चिन्ता किये बगैर, दूसरों को कष्ट देना, उन्हें बरबाद करना, आतंकी गतिविधियों को बढ़ावा देना इस प्रवृति की देन है।

लोरेन्स (१९६८) के अनुसार प्राणी स्वयं के अस्तित्व को बनाये रखने हेतु आक्रामक/ हिंसक व्यवहार प्रदर्शित करता है। प्रौद्योगिक विकास के कारण मानव की विध्वंसात्मक शक्ति में वृद्धि हो गई है तथा निषेधात्मक प्रवृति में कमी आ गई है। प्राणी में आक्रामक/ हिंसक प्रवृति जन्मजात है। जैसे ही उसे बाह्य उतेजना मिलती है वह इस प्रवृति को अभिव्यक्त करता है।

आतंकवादियो द्वारा हिंसक आक्रामक व्यवहार उन्हीं की कुण्ठा का प्रदर्शन है। उनकी लक्ष्य प्राप्ति में बाधा के कारण है।

बान्डुरा व वाल्टर्स (१९६३) के अनुसार आक्रामक/ हिंसक व्यवहार सीखा गया व्यवहार है। आक्रामक व्यवहार को कुण्ठित

अनुभव, निर्देश, अवलोकन प्रोत्साहन व पुरस्कार मिलने की आशा से उत्तेजना मिलती है।

आतंकवाद को बढ़ावा देने में जनसंचार के माध्यम जैसे समाचार–पत्र, पत्रिकाओं, फिल्म, दूरदर्शन व इंटरनेट की भी अहम भूमिका है।

हमारे द्वारा निर्मित परिस्थितियाँ ही आतंकवाद का आधार है। शिक्षा में अन्तर सम्पन्नता का अन्तर, शक्तिशालियों का प्रभाव, मुख्य कारण है। जब दमित अपनी पीड़ा अभिव्यक्त करने में असमर्थ हो जाता है, उसे हर और से पीड़ित किया जाता है, न्याय की आशा नहीं रह जाती, हर ओर से प्रताड़ना ही मिलती है तो निरूपाय, असहाय, निराशावादी, आतंकवाद की शरण खोजता है। जीवन–यापन के साधन, संस्कृति, मान्यता से बलपूर्वक वंचित होने वाला समूह अपने आपको निर्मम अत्याचार का शिकार महसूस करता है और आतंकवाद की शरण खोजता है। क्या यह क्रूर परिहाष नहीं कि रूपये ३२.०० प्रतिदिन कमाने वाला, गरीब नहीं? एक तरफ इतने बड़े–२ घोटाले, जिनकी कल्पना करना भी सम्भव नहीं और एक तरफ ७० प्रतिशत लोगों को खाने को अन्न नहीं, रहने को घर नहीं, तन ढ़कने को कपड़ा नहीं।

आज जो आतंकवाद का ताण्डव नजर आ रहा है, इसके मूल कारण है, दूसरों पर अधिपत्य स्थापित करना, दूसरे के संसाधन हड़पना, गलत व सही तरीके अपना कर, दूसरों से आगे निकलना, अपनी सुख–सुविधा हेतू, दूसरे के दु:ख दर्द को नकारना।

यदि आतंकवाद का शक्ति से प्रतिरोध किया जाये तो यह वास्तविक–युद्ध को निमन्त्रण होगा। समझौता– उन्हें अपने समूह का अस्तित्व खतरे में नजर आता है। आतंकवाद को समाप्त करने हेतू समस्याओं के कारणों में झांकना होगा, वंचितों की कुण्ठा को समझकर निर्णय लेना होगा।

Inclusive Education एक छोटा सा उपाय है हर बच्चा गरीब या अमीर, स्वस्थ या अस्वस्थ प्रतिभाशाली या मन्दबुद्धि, ताकतवर या कमजोर उच्च–नीच, सबको शिक्षा के समान अवसर प्राप्त होंगे, तो निश्चित छोटे–बड़े की, अमीर गरीब की कुंठा समाप्त होगी। मानव निर्मित परिस्थितियों ही आतंकवाद का आधार होती है।

भगवान महावीर ने अहिंसा परमो धर्म कहा है। अहिंसा ही वह शस्त्र है जिसके द्वारा किसी भी प्राणी को चोट नहीं पहुँचती। आतंकवादी गतिविधियाँ हिंसात्मक प्रतिरोध से बढ़ती हैं। शक्तिशाली प्रतिरोध नीति, आतंकवाद का स्थाई हल नहीं। अत: आतंकवाद को प्रभावहीन करने हेतू आवश्यक है कि जनता को आतंकवाद के प्रभावों से जागरूक किया जाये, उन्हें विसंवेदनशील बनाया जाये। महावीर द्वारा बताये गये सिद्धान्त जीवन जीने की एक ऐसी शैली है जिसे आत्मसात कर मनुष्य सुख व शांति से जीवन–यापन कर सकता है तथा दूसरों के लिये भी सुख शान्ति से जीने का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

हिंसा किसी भी समस्या का समाधान नहीं। अहिंसा ही एक ऐसा हथियार है जो समस्त जीवों के प्रति सम–भाव, सद्–भाव रखता है। हर धर्म ने इसे मान्यता दी है। वेदों में कहा है कि 'सृष्टि के समस्त प्राणियों को मित्र, मानो। यहूदी धर्म में कहा है कि 'किसी को मत मारो'। इसाई धर्म में कहा गया है कि शत्रु से भी प्यार करो। इस्लाम धर्म में खुदा का अर्थ 'रहीम' है, अर्थात् समस्त विश्व पर दया करने वाला। जैन धर्म में तो अहिंसा को परम धर्म कहा है। वर्तमान समय में भगवान महावीर का संदेश 'जीओ और जीने दो' ही सार्थक है। अहिंसा ही हिंसा के ताण्डव को समाप्त कर सकती है। हिंसा एक भावनात्मक बीमारी है। हमारे अन्दर पशु इतना सक्रिय कैसे हो गया? हमारे अन्दर, इतना मुखर क्यों हो गया? यह सब विचारणीय है। हम अवश्य विक्षिप्त हो गये है।

एक छोटी सी काल्पनिक कहानी, आपको भी रूचिकर लगेगी। ईश्वर ने, मनुष्य की अपने हाथों, अपनी मृत्यु के आयोजन किये इस हेतु अमरीका, ब्रिटेन और रूस को बुलाया। इन के प्रतिनिधियों को कहा कि वर्षों से, सदियों से देख रहा हूँ मगर इतनी विक्षिप्तता–इतनी समृद्धि के बीच, इतनी शक्ति के होते हुये– अपने हाथों अपनी आत्मघाती गतिविधियाँ, समझ में नहीं आती। तुम्हें ज्ञात है कि तुम सब क्या कर रहे हो– तुम्हारे यह सब करने का क्या परिणाम होगा। मैं चाहता हूँ कि मनुष्य फले–फूले। इस सबके लिये मैं तुम तीनों को एक–एक वरदान माँगने को कहता हूँ जिससे मनुष्य जाति बच सके। अमेरीका के प्रतिनिधि ने कहा, मेरे मालिक हमें कुछ नहीं चाहिये, बस ऐसा हो कि पृथ्वी तो रहे– मगर रूस का नामो निशान न हो। ईश्वर को दु:ख हुआ– क्योंकि ऐसा वरदान कभी किसी ने मांगा नहीं था। उदास हृदय से उसने रूस के प्रतिनिधि की तरफ देखा। रूस के प्रतिनिधि ने कहा, महानुभाव एक तो हम आप पर ही विश्वास नहीं करते। हम नहीं मानते कि ईश्वर है– मगर मान

लेंगे यदि हमारी आकांक्षा पूरी हो जाये। नक्शे तो हो जमीन पर, दुनिया के नक्शे तो हो, मगर अमेरिका की कोई रंग–रेखा न हो। ईश्वर ने घूमकर ब्रिटेन के प्रतिनिधि की तरफ देखा। उसने कहा प्रभु हमारी कोई आकांक्षा नहीं, बस इन दोनों की (अमेरिका और रूस) आकाक्षांये एक साथ पूरी हो जाये। हम समझेंगे की हमारी आकांक्षा पूरी हो गई। अब ऐसे युग को स्वस्थ कहिएगा। पूरा विश्व विक्षिप्तता से ग्रस्त है और इस सत्य को जितनी जल्दी हम जान ले, उतना उचित है।

इस विक्षिप्तता का टूटना आसान नहीं। मनुष्य की प्रवृत्ति में कुछ है जहाँ से यह विक्षिप्तता फलती–फूलती है और जब तक इस प्रवृत्ति में परिवर्तन नहीं आयेगा, मनुष्य में विवेक जागृत नहीं होगा। उसकी पशु प्रवृति उसे विनाश की और धकेलेगी। मनुष्य ऐसे ही हिंसक नहीं है, कारण है उन कारणों पर विजय पानी ही होगी और अहिंसक मानव ही एक मात्र त्राण है।

भगवान महावीर ने कहा था, अहिंसा एकमात्र त्राण है। यह बात इतनी सत्य कभी नहीं थी जितनी आज के संदर्भ मे अहिंसा के अतिरिक्त आज कोई मार्ग नहीं– महावीर या महाविनाश, इन दो के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं।

हिंसा और आतंकवाद आज मानव समाज के लिए अभिशाप बने हुये है। आतंकवाद हिंसा के पेड़ पर लगा फल है। इसकी जड़े घृणा, द्वेष विश्वव्यापी समस्या बन चुका है। आक्रामकता सदैव किसी न किसी कुण्ठा का परिणाम है। इन कुण्ठाओं को जानना होगा, महसूस करना होगा, इनसे निजात पाना होगा। वर्तमान परिपेक्ष्य में भगवान महावीर द्वारा बताया गया अहिंसा का सिद्धांत प्रासंगिक है। *जीओं और जीने दो* के संदेश को आत्मसात करने पर ही हिंसा के ताण्डव से निजात पाया जा सकता है। मनुष्य को स्वस्थ रखने हेतु आवश्यक है अहिंसा–शान्ति। अत: हिंसक प्रवृत्ति को त्याग कर अहिंसा का मार्ग ही विश्वशान्ति के लिये रामबाण है।

संदर्भ

डॉ० सरोज कोठारी –आतंकवाद का मनोविज्ञान एवं अहिंसा के सिद्धान्त की प्रासंगिता
ओशो –महावीर या महाविनाश
ओशो –ज्यों की त्यों धारे दीन्हों चर्दारया
फ्रायड.(१९५७) –इन्सटिंक्टस और विस्सिटिटयुडस
लोरेन्ज (१९६८) –औन अग्रसैन
डोलार्ड मिलर, डूब मावरर एवं सियटस (१९३९) –फरस्ट्रेशन और अग्रसेन
बान्दुराए वाल्टर (१९६३) –सोसल लरनिंग और प्रशनेलिटी डेवलेपमैंट

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,45-47**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 जनवरी 2017

स्त्रियों के प्रति अम्बेडकर का योगदान

डॉ0 धनञ्जय कुमार*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *स्त्रियों के प्रति अम्बेडकर का योगदान* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *धनञ्जय कुमार* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

प्रस्तुत लेख में अम्बेडकर द्वारा भारतीय स्त्रियों के प्रति किए गए कार्यों एवं स्त्रियों के हित के लिए अम्बेडकर के योगदान का मूल्यांकन किया गया है। भारतीय नारी को स्वतंत्रता, समानता, सम्पत्ति में उत्तराधिकार, तलाक, विधवा विवाह, बाल विवाह निषेध, गर्भवती महिलाओं को प्रसूति अवकाश जैसे अधिकार अम्बेडकर के ही प्रयासों से प्राप्त हुआ। उन्होंने भारत के प्रथम विधिमंत्री के रूप में हिन्दू कोड बिल बनाकर संसद के समक्ष प्रस्तुत किया, जिसका पुरूषवादी मानसिकता वाले लोगों ने भारी विरोध किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत हिन्दू कोड बिल को तत्कालीन परम्परावादी नेताओं ने पास नहीं होने दिया।

लेकिन अम्बेडकर ने भारतीय संविधान में नारियों की दासता की बेड़िया काटने एवं उन्हे समानता का अधिकार दिलाने संबंधी कुछ विधान अवश्य बना दिए। प्रस्तुत लेख में विशेष विवाह अधिनियम (१९५४), हिन्दू विवाह अधिनियम(१९५५), हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (१९५६), हिन्दू दत्तक तथा भरण–पोषण अधिनियम (१९५६), खान प्रसूति लाभ अधिनियम (१९४५), भारतीय खान अधिनियम (१९४६), खान श्रमिक कल्याण कोष (१९४४), समान कार्य समान वेतन (१९४४), स्त्री शिक्षा और हिन्दू कोड बिल (१९४७) के माध्यम से अम्बेडकर का स्त्रियों के प्रति योगदान की चर्चा की गई है। जिसके लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद १४, १५, १६, ३९ और ४२ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

विशेष विवाह अधिनियम[४] द्वारा विभिन्न धर्मो को मानने वाले लोगों को अपना धर्म परिवर्तन किए बगैर अन्य धर्म में भी विवाह करने का अधिकार दिया गया। इससे भारतीय स्त्री अपने धर्म के अलावा दूसरे धर्म के पुरूष से भी विवाह कर सकती हैं। इसमें लड़के की उम्र २१ वर्ष एवं लड़की की उम्र १८ वर्ष होना अनिवार्य है। यह अम्बेडकर का प्रयास था कि इस अधिनियम के तहत एक विधवा स्त्री को अपनी संतान और उत्तराधिकारी होते हुए भी संपत्ति का तीसरा भाग प्राप्त करने का अधिकार मिला।

* पूर्व-शोध छात्र, इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। (पुनः प्रकाशन)

© लेखक 2017, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

हिन्दू विवाह अधिनियम[२] के द्वारा स्त्री को पहली बार स्वतंत्रता का बोध हुआ, जिसके तहत स्वयं स्त्री भी अपने पति से तलाक ले सकती है। प्राचीन परम्पराओं के तहत हिन्दू अपनी–अपनी धार्मिक रीति–रिवाजों से ही विवाह करते हैं। उसी विवाह को ठीक भी माना गया है, जो पवित्र अग्नि के सामने एक साथ वर–वधू सात फेरे (सप्तपदी) के साथ पूर्ण होता हैं। हिन्दू समाज में अपनी जाति या धर्म से बाहर तो क्या सगोत्र विवाह भी निषेध था। हिन्दू विधि में पिता की ओर से पांचवे और माता की ओर से तीसरे वंशक्रम के लोगों में विवाह आपस में नही हो सकता था। इसको सपिण्ड संबंध कहा जाता था। हिन्दू समाज में बहु–पत्नी प्रथा पर प्रतिबंध भी नहीं था और स्त्री को तलाक का अधिकार भी नहीं था। एक बार स्त्री पति की डोरी में बंध गई, तो कभी भी अलग नहीं हो सकती थी। लेकिन अम्बेडकर के प्रयासों से इस अधिनियम के द्वारा स्त्रियों के लिए एक पत्नी प्रथा को सार्वभौमिकता का नियम बना दिया गया और एक से अधिक विवाह करने वाले व्यक्ति को संविधान में अपराधी ठहराया गया। यदि विवाह के पश्चात् पुरूष बलात्कार या अपशिष्टता का अपराधी पाया जाता हैं, तो स्त्री स्वयं अपने पति से तलाक अपने नजदीकी न्यायलाय के माध्यम से ले सकती है। इसमें अम्बेडकर ने इस बात पर भी बल दिया कि जब तक तलाक का मुकदमा न्यायालय में चलेगा, तब तक स्त्री को अपने जीवन निर्वाह के लिए पुरूष की ओर से खर्चा भी दिया जाएगा।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम[३] के द्वारा स्त्री को संपत्ति का उत्तराधिकार है। पहले यह अधिकार उसके जीवन निर्वाह तक ही सीमित रहता था। लेकिन अम्बेडकर के प्रयासों से ही भारतीय स्त्रियों की सुरक्षा की दृष्टि से स्त्रियों को भी अपनी संपत्ति का हस्तांरण करने का अधिकार प्राप्त हुआ। इतना ही नहीं उस संपत्ति को अब वह बेच भी सकती है और आवश्यकता पड़ने पर गिरवी भी रख सकती है।

हिन्दू प्राचीन परम्पराओं में किसी स्त्री को गोद लेने का अधिकार नहीं था, क्योंकि पिता की आत्मा की मुक्ति एवं शांति के लिए लड़के द्वारा ही पिण्डदान का रिवाज था। इसलिए लड़का तो गोद लिया जा सकता था। लेकिन लड़की को गोद नहीं लिया जा सकता था। अम्बेडकर के प्रयासों से ही हिन्दू दत्तक तथा भरण–पोषण अधिनियम[४] के द्वारा लड़की को भी गोद लिया जा सकता है। इससे भारतीय समाज को यह लाभ हुआ कि जिस पुरूष के पास केवल पुत्र ही थे और कन्या नहीं थी। अब वे भी इस अधिनियम के तहत किसी कन्या को अपनी पुत्री बना सकते हैं।

जो स्त्रियाँ कोयला खानों में काम करती थीं, उनके प्रसूति लाभ में बहुत कमियाँ थी। जो अम्बेडकर के प्रयासों से ही खान प्रसूति लाभ अधिनियम[५] के द्वारा दूर किया गया। उनके प्रयासों से ही खान में काम करने वाली महिलाओं को चार सप्ताह के सवेतन प्रसूति अवकाश का पूर्ण लाभ प्राप्त हुआ। जो बाद में उन्हीं के प्रयासों से छत्तीस सप्ताह हुआ। जिसमें छब्बीस सप्ताह अनिवार्य रखे गए और दस सप्ताह आंशिक रूप से। इस अवधि में छः रूपये प्रति सप्ताह के हिसाब से प्रसूति लाभ देना तय किया गया।[६] साथ ही यह सारा समय अधिकृत अवकाश माना गया। ताकि कोई नियोजक किसी महिला श्रमिक को काम पर से हटा न सके।

भारतीय खान अधिनियम के अन्तर्गत कोयला खानों में (पिट हेड़स) स्त्री श्रमिकों के लिए भी पुरूषों की तरह अलग से सुविधायुक्त स्नानघर बनाने का प्रावधान अम्बेडकर द्वारा किया गया। ताकि महिला श्रमिक भी पुरूष श्रमिक की तरह नहा–धोकर साफ कपड़ों में अपने घर जा सके। इतना ही नहीं महिला श्रमिकों के लिए तेल, साबुन की व्यवस्था का भी प्रावधान किया गया। यदि कोई खान मालिक निर्धारित समय में यह सुविधा उपलब्ध नहीं कराता है, तो सरकार अपनी ओर से ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध कराके उसका पूरा खर्च खान मालिक से ले सकती है।

अम्बेडकर के प्रयासों से खानों में काम करने वाली समस्त महिलाओं के लिए खान श्रमिक कल्याण कोष अध्यादेश लागू किया गया। इस कोष के लिए राशि की व्यवस्था खानों से रेलगाड़ी द्वारा बाहर जाने वाले कोयले पर कर लगा कर किया जाता था। अम्बेडकर ने खानों में काम करने वाली महिला श्रमिकों को भी पुरूष श्रमिकों की तरह ही समान कार्य का समान वेतन[७] पाने का अधिकार दिया। उनके अनुसार उस समय(१९४४) खान में काम करने वाली महिला श्रमिकों की संख्या पन्द्रह हजार थी।

अम्बेडकर तत्कालीन शिक्षा की स्थिति से बहुत दुखी थे। वह चाहते थे कि लड़कों के साथ लड़कियों को भी शिक्षा दी जाएगी, तो अपने देश की प्रगति जोरदार होगी। उन्होंने स्त्री शिक्षा की शुरूआत अपने घर से ही की थी। अपनी अशिक्षित पत्नी रमाबाई को शिक्षित किया। नारी शिक्षा को वे कितना महत्त्व देते थे कि इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है। औरंगाबाद

(महाराष्ट्र) के मिलिन्द कालेज की माली हालत ठीक नहीं थी, फिर भी उन्होनें मात्र चार छात्राओं के लिए अलग से विद्यालय खोलवाया। जिसमें पढ़ने वाली चारों छात्रायें सवर्ण हिन्दू समाज की थीं।

वे महिला अधिकारों के लिए हिन्दू कोड बिल[८] के निर्माता थे। स्त्री समानता के लिए उनका रूख हमेशा समाजवादी था। वह बताते हैं कि यदि महिलाएँ आश्वस्त हो जाए, तो वे भारतीय समाज की दशा सुधार सकती हैं। मुझे खुशी होगी जब मैं असेंबली में स्त्री–पुरूष दोनों को समान प्रगति करते हुए देखूँगा। वही प्रगति हमारे समाज की सच्ची प्रगति होगी। अप्रैल १९४७ में यह बिल सदन में पेश किया गया, परन्तु सहमति नहीं बन पायी। इस पर वह आगे बताते हैं कि हिन्दू कोड बिल की हत्या कर दी गई, जिस पर किसी ने आँसू भी नहीं बहाया। यह बिल मुख्यतया हिन्दू स्त्रियों की परिस्थिति में प्रगतिशील परिवर्तन था। इसी दृष्टि से यह तैयार किया गया था। आज महिला विधेयक के संदर्भ में अम्बेडकर की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है।

इस प्रकार अम्बेडकर के प्रयासों के कारण अपने संवैधानिक हक प्राप्त कर सकने में सक्षम महिलाएँ कानून का संरक्षण लेकर स्व–सम्मान के साथ जी रही हैं और वह स्व–निर्भर होकर स्वतंत्र जीवन बिता रही हैं। उन्हीं की बदौलत आज भारतीय नारी अपने अधिकारों सहित सम्मानपूर्वक जीवन जी रही हैं। आज उसको भी भारतीय धन पर पूर्ण स्वामित्व प्राप्त है। आज विधवा को पहले की भांति उपेक्षित एवं पीड़ित होकर अपना शेष जीवन नहीं बिताना पड़ता है। वह जीवन पर्यंत उस संपत्ति की अधिकारी होती हैं, जो उसे अपने पति के हिस्से से प्राप्त होती है। अम्बेडकर ने अपने प्रयासों से उपरोक्त के अतिरिक्त अनेकों अधिनियम (दहेज प्रतिबंध अधिनियम, मातृत्व हित लाभ अधिनियम, बाल विवाह प्रतिबंध अधिनियम आदि) पारित कराए। जिससे वास्तव में भारतीय नारी एक सुरक्षित जीवन बिता सकती है। उन्होंने भारतीय नारी की उन्नति के सभी द्वार खोल दिए। सदियों के उत्पीड़न की व्यथा झेल कर अब नारी इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि वह देवी के रूप में नहीं, बल्कि एक मानव की तरह जीना चाहती है और मानव की तरह जीने का अधिकार अम्बेडकर ने संविधान में दे दिया। इस तरह आज भी अम्बेडकर भारतीय नारी के एक उद्धारक के रूप में राष्ट्र के सम्मुख खड़े हैं।

संदर्भ ग्रंथ

[१]अंजनी कान्त –महिला एवं बाल कानून, सेन्ट्रल ला पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, २००५, पृष्ठ संख्या १६

[२]डा. पारस दीवान –आधुनिक हिन्दू विधि की रूपरेखा, इलाहाबाद ला एजेंसी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, २००३, पृष्ठ संख्या ४१५

[३]डा. पारस दीवान –आधुनिक हिन्दू विधि की रूपरेखा, इलाहाबाद ला एजेंसी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, २००३, पृष्ठ संख्या ३९७

[४]डा. पारस दीवान –आधुनिक हिन्दू विधि की रूपरेखा, इलाहाबाद ला एजेंसी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, २००३, पृष्ठ संख्या ४०७

[५]*अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय* भाग–२१, प्रकाशन डा. अम्बेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली, १९९८, पृष्ठ संख्या १५

[६]कुसुम मेघवाल –भारतीय नारी के उद्धारक डा. अम्बेडकर, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, २००५, पृष्ठ संख्या १३६

[७]डा. जयनारायण पाण्डेय –भारत का संविधान, सेन्ट्रल ला एजेंसी, इलाहाबाद, २००८, पृष्ठ संख्या ३६८

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,48-50**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 नवम्बर 2017

गाँधी जी का राजनीतिक दर्शन और वर्तमान राजनीति

डॉ० सीमा रानी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *गाँधी जी का राजनीतिक दर्शन और वर्तमान राजनीति* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सीमा रानी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

''गाँधी जी का आग्रह था कि राजनीति का आधार धर्म होना चाहिए। उन्होंने उपयोगिता के इस प्रसिद्ध सिद्धान्त को कभी स्वीकार नहीं किया कि धर्म व्यक्ति का निजी मामला है और इसलिए राजनीति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए।'' –विश्वनाथ प्रसाद वर्मा।[१]

महात्मा गांधी एक पैगम्बर भी थे और राजनीतिज्ञ भी। वस्तुत: वे धार्मिक व्यक्ति थे। वे अन्त: चेतना के प्राणी थे। वे ईश्वर भक्त थे। उन्होने धर्म से पृथक राजनीति की कल्पना नहीं की थी। उनके लिए धर्म वैयक्तिक शुद्धि का ही साधन नहीं था अपितु सामाजिक एकता का भी प्रबल सूत्र था। उनके अनुसार, ''धर्म को जड़ से उखाड़ फेंकने पर समाज का विनाश हो जायेगा।''[२] उनके लिए यह स्थिति बहुत कष्टदायी थी कि धर्म रहित राजनीति का साम्राज्य हो तथा छल छद्म युक्त राजनीति की प्रमुखता हो। उन्होंने कहा कि कुटिल राजनीति जो नैतिकता विहीन हो, किसी भी दशा में उचित नहीं है। गांधी जी ने सत्य, अहिंसा और धर्म पर आधारित अपने राजनीतिक दर्शन का महल खड़ा किया। वर्तमान में राजनीति को इस दर्शन की सबसे अधिक आवश्यकता है।

गाँधी जी का राजनीतिक दर्शन राजनीति और धर्म के बीच अटूट सम्बन्ध पर आधारित है। उन्होंने राजनीति को ऊपर उठाकर नि:स्वार्थ लोक सेवा तथा नैतिकता के स्तर पर रखा। उनका कहना था कि राजनीति तमाम बुराईयों के बावजूद मनुष्य के लिए अनिवार्य है। गाँधी जी धर्म को मानव जीवन में सर्वोपरि स्थान प्रदान करते हैं तथा धर्म के बिना उसका कोई महत्व स्वीकार नहीं करते हैं। राजनीति और धर्म की अविच्छेदनीयता की व्याख्या करते हुए वे कहते है, ''जो व्यक्ति राजनीति और धर्म को असम्बद्ध और विच्छेदनीय मानते हैं, वे धर्म का अर्थ नहीं जानते और राजनीति से भी अपरिचित है।''[३] अत: गाँधी जी के अनुसार धर्म और राजनीति को अलग नहीं किया जा सकता। वे एक दूसरे के पूरक है। वास्तव में गाँधी जी धर्मविहीन राजनीति को कोई महत्व प्रदान नहीं करते हैं। उनका कथन है कि, ''मेरे लिए धर्मविहीन राजनीति का कोई महत्व नहीं है। राजनीति धर्म के अन्तर्गत है, बाहर नहीं। धर्मविहीन राजनीति मृत्यु के समान हैं क्योंकि वह आत्मा का हनन करती है।''[४]

* असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र विभाग, दमयन्ती राज आनन्द राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय (बिसौली) बदायूँ (उत्तर प्रदेश) भारत। (पुनः प्रकाशन)

© लेखक 2017, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

राजनीति को धार्मिक अर्थात् नैतिक रूप प्रदान करना तथा उसे ही मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन का आधार बनाना गाँधी जी के राजनीतिक जीवन का प्रमुख उद्देश्य था। गाँधी जी ने कहा कि– ''यदि आज मैं राजनीति में हिस्सा लेता हुआ दिखाई पड़ता हूँ तो उसका एकमात्र कारण यही है कि राजनीति वर्तमान समय में हमें सांप की तरह चारों ओर लपेटे हुए है जिसके चंगुल से हम कितनी ही कोशिश क्यों न करें, नही निकल सकते'' इसलिए उन्होंने उस सांप को बदलने की कोशिश की और कहा– ''मैं उस साँप से द्वन्द्व युद्ध करना चाहता हूँ अत: मैं राजनीति में धर्म को लाना चाहूँगा।''[५]

गाँधी जी का दृढ़ विश्वास था कि ''जैसे साधन होंगे वैसे ही साध्य होगे। इसलिए उन्होंने कहा कि राजनीति शक्ति और सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए संघर्ष नहीं है, बल्कि वह लाखों पद–दलितों को सुन्दर जीवन–यापन करने योग्य बनाने, मानवीय गुणों का विकास करने, उन्हें स्वतंत्र और बन्धुत्व तथा आध्यात्मिक गहराइयों व सामाजिक समानता के बारे में प्रशिक्षित करने का निरन्तर प्रयास है। राजनीति में धर्म का समावेश सत्य और न्याय की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर होना है। ''धर्म से पृथक राजनीति एक मृत देह के समान है जिसको जला देना ही उचित है।''[६]

वास्तव में गाँधी जी का सम्पूर्ण जीवन ही नैतिकता की सतत् साधना है। उन्होंने नैतिक मूल्यों को हमारे रोजमर्रा की व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं से जोड़ दिया। गाँधी जी साफ कहते है– ''अहिंसा सत्ता पर कब्जा नहीं दिलवा सकती और यह उसका लक्ष्य हो भी नहीं सकता। हाँ सत्ता को प्रभावशाली ढंग से काबू में लाकर उसे संचालित जरूर कर सकती है लेकिन सरकार या प्रशासन तंत्र को हथियाए बिना।''[७]

गाँधी जी ने राजनीति को धर्म के रंग में रंगकर नैतिक मूल्यों पर आधारित किया। उन्होंने राजनीति से विग्रह, विघटन, विद्रोह और विनाश की प्रवृत्तियों के उन्मूलन पर जोर दिया तथा राजनीति में भावना–सहयोग, समन्वय और संगठनात्मक तत्वों का अधिकतम समावेश करना चाहा। गाँधी जी का राजनीति के आध्यात्मीकरण का विचार कोरा विचार ही नहीं था अपितु उन्होंने अपने जीवनकाल में उसे कार्यान्वित भी किया। उन्होंने सत्य, अहिंसा आदि धार्मिक–नैतिक सिद्धान्तों का राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में, जो सफलतापूर्वक प्रयोग किया, उसे सम्पूर्ण विश्व के राजनीतिज्ञों ने उसकी आश्चर्य और श्रद्धा से सराहना की। एक सन्त राजनीतिज्ञ के रूप में उन्होंने विश्वव्यापी ख्याति अर्जित की। ''राजनीति में धर्म का समन्वय'' आधुनिक पीड़ित मानवता को उनकी सबसे महान देन है।[८]

परन्तु वर्तमान राजनीति में न नैतिकता दिखाई पड़ती है और न कोई मूल्य। आज अगर गाँधी जी हमारे बीच होते तो उन्होंने राजनीति में बढ़ती हिंसा, भ्रष्टाचार, अमर्यादा की कठोरता से आलोचना की होती।

गाँधी जी के लिए राजनीति धर्म और नैतिकता की एक शाखा थी। अत: उन्होंने राजनीति को शक्ति और सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए संघर्ष नहीं माना। उग्रवादी तिलक ने एक बार कहा था कि राजनीति साधुओं का खेल नहीं है। इस पर गाँधी जी का उत्तर था– ''राजनीति साधुओं का और केवल साधुओं का कार्य है।'' साधुओं से उनका आशय अच्छे व्यक्तियों से था। गाँधी जी के विचारों के समर्थन में डॉ० राधाकृष्णन का यह मत ग्राह्य है कि राजनीति क्षेत्र में विश्व को अधिक सफलता मुख्यत: इसलिए प्राप्त नहीं हुई कि उसने राजनीति से धर्म को पृथक रखा है।[९]

गाँधी जी ने जो आदर्श समाज–व्यवस्था प्रस्तुत की, वह पूर्ण रूप से धर्मनिरपेक्ष थी। वास्तव में वह राज्य को नीति–धर्म के शाश्वत और सार्वभौमिक नियमो–सत्य, अहिंसा, प्रेम सेवा पर आधारित करना चाहते थे।

परन्तु आज गाँधी जी का राजनीतिक दर्शन परियों की कहानी सा लगता है। आज भारत की दलगत राजनीति किसी से छिपी नहीं है। किसी उर्दू शायर ने ठीक ही कहा है कि ''अंधेरा छा जाएगा जहाँ में अगर यही रोशनी रही।''

गाँधी जी ने भारत सरकार के मंत्रियों के लिए एक आचार संहिता बनाई थी। अपने को गाँधी का शिष्य मानने वाले कितने मंत्री है जो यह मानते हैं कि मंत्री पद सत्ता का नहीं, सेवा का द्वार है, कि पदों के लिए छीना झपटी होनी ही नहीं चाहिए। लालफीताशाही को खत्म करने की योजना तो वे क्या बनाते, वे स्वयं उसका शिकार हो गए है। आज देश में विदेशी वस्तुओं का क्रेज बढ़ रहा है और गाँधी जी बात करते थे स्वदेशी की। वे कहते थे कि मंत्रियों को और गवर्नरों को ज्यादा से ज्यादा सत्यपरायण, अहिंसापरायण, नम्र और सहनशील होना चाहिए। परन्तु आज मंत्रियों में इनमें से एक गुण भी देखने को नहीं मिलता। कुर्सी की लालसा, बदले की भावना ने राजनीति को गर्त में डुबो दिया है।[१०]

अत: आज प्रश्न यह नहीं है कि हम गाँधी जी को कितना स्वीकार करते है बल्कि उनके विचारों के पीछे जो भावना है उसको समझना है। विचार शाश्वत है लेकिन निरन्तर विकसित भी होता है। यह विकसित होना ही उसके शाश्वत होने की गांरटी है। इस रहस्य को ही हमें समझना है।

संदर्भ ग्रंथ

[१]*विश्वनाथ प्रसाद वर्मा की पुस्तक से उद्‌धृत,* पृष्ठ संख्या–२७६

[२]डॉ० भद्रदत्त शर्मा एवं डॉ० अंजनी कुमार जमदग्नि –*''भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन''* १९९९, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा–३, पृष्ठ संख्या–२३५

[३]जीवन मेहता –*''प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक''* २००८, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ संख्या–२५३

[४]*देखें वही संदर्भ।*

[५]डॉ० अमरेश्वर अवस्थी एवं डॉ० रामकुमार अवस्थी –*''आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन'',* १९७४, रिसर्च पब्लिकेशन, नई दिल्ली, जयपुर, पृष्ठ संख्या–३७७

[६]डॉ० प्रभुदत्त शर्मा –*''अर्वाचीन राजनीतिक चिन्तन (मार्क्स से अब तक),''* २०००, कालेज बुक डिपो, नई दिल्ली, जयपुर, पृष्ठ संख्या –२६७

[७]*समाज विज्ञान शोध पत्रिका,* वोल्यूम VI, नं. २ (२००७).

[८]डॉ० प्रभुदत्त शर्मा –*''अर्वाचीन राजनीतिक चिन्तन (मार्क्स से अब तक),* २०००, कालेज बुक डिपो, नई दिल्ली, जयपुर, पृष्ठ संख्या–२६८

[९]शम्भूरत्न त्रिपाठी –*गाँधी–धर्म और समाज,* पृष्ठ संख्या ३७

[१०]विष्णु प्रभाकर –*''गांधी : समय, समाज और संस्कृति''* २०००, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–१४८

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,51-53**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 01 जून 2016

नीति आयोग : भारत में नियोजन का बदलता स्वरूप

डॉ० शिखा दीक्षित*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *नीति आयोग : भारत में नियोजन का बदलता स्वरूप* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *शिखा दीक्षित* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

किसी भी देश की उत्पादन क्षमता आय आदि में वृद्धि हेतु उपलब्ध संसाधनों के आवश्यकता होती है। भारत में १५ मार्च १९५० को इसी उद्देश्य से योजना आयोग की स्थापना हुयी। परन्तु आज के बदलते हुये वैश्विक परिदृश्य में इसकी केन्द्रीयकृत योजना का स्वरूप अप्रासंगिक प्रतीत होने लगा जिससे सहयोगात्मक संघवाद की स्थापना हेतु नीति आयोग स्थापित किया गया जिसका उद्देश्य राज्य और केन्द्र के सम्मिलत सहयोगात्मक प्रयासों से उच्च विकास के स्तर को प्राप्त करना है।

भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति एक नियोजित मिश्रित अर्थव्यवस्था की है। योजना आयोग के माध्यम से भारत ने अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। आधारभूत संरचना का निर्माण हुआ, संसाधनों का प्रयोग हुआ, संवृद्धि की उच्च दर प्राप्त हुयी परन्तु सभी एक केन्द्रीयकृत प्रणाली के अन्तर्गत हुआ जिसमें विकेन्द्रीकृत आयोजन यद्यपि अपनाया गया परन्तु ढाँचा केन्द्रीयकृत था। दृष्टिकोण अन्तर्मुखी था। विमल जालान ने अपनी पुस्तक इण्डियन इकोनॉमिक पॉलिसी में कहा– यद्यपि भारत को संवैधानिक रूप से राज्यों का संघ घोषित किया गया था परन्तु नियोजन की प्रक्रियाओं, विनियमन, निर्देशन और आर्थिक गतिविधियों का अधिकार संघ सरकार के पास अधिक से अधिक केन्द्रित हो गया।[1]

अत: विकेन्द्रीकृत प्रणाली को अपनाने तथा नियोजन को और अधिक प्रभावी और कार्यकारी बनाने के उद्देश्य से १ जनवरी २०१५ को योजना आयोग के स्थान पर नीति आयोग का गठन हुआ। इसके अध्यक्ष पूर्व की भाँति प्रधानमंत्री ही होंगे। इसका उद्देश्य सरकार के लिये प्रबुद्ध मण्डल (थिंक टैंक) का काम करना होगा जो राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु राज्य सरकारों के योगदान को बढ़ाने हेतु, शासन संरचना में परिवर्तन हेतु सुझाव देगा। नीति निर्माण हेतु नीति आयोग रणनीतिक एवं तकनीकी सुझाव भी देगा तथा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनाये जाने वाले सर्वोत्तम तरीकों, नये नीतिगत विचारों तथा मुद्दों पर आधारित सहायता आदि पर यह आयोग कार्य करेगा और देश हित में निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति में इसके दूसरे मुख्य

* एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, जगत तारन गर्ल्स डिग्री कॉलेज (सम्बद्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय) इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2017, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

कार्य निम्नवत होंगे :

- राष्ट्रीय लक्ष्यों के प्राप्ति हेतु राज्यों के सहयोग को बढ़ाने के लिये राष्ट्रीय निर्माण हेतु प्राथमिकताओं, क्षेत्रों और रणनीतियों पर समान दृष्टि विकसित करना,
- सहयोगात्मक संघवाद को बढ़ावा देना,
- नीतिगत प्रणाली में राज्यों के साथ उचित सामंजस्य स्थापित करना,
- ग्रामीण स्तर पर योजनाओं के प्रभावी रूप से क्रियान्वयन हेतु उचित कार्यप्रणाली की स्थापना करना,
- राष्ट्रीय सुरक्षा के हित में आर्थिक नीति के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करना,
- ज्ञान, नवाचार और उद्यमशीलता को बढ़ाने हेतु इसके सहायक प्रणाली को विकसित करना, जिसमें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के विख्यात विद्वानों, विशेषज्ञों, आदि अन्य की भागीदारी लेना,
- दीर्घकालीन और रणनीतिक योजनाओं, कार्यक्रमों का निर्माण एवं उनकी प्रगति और प्रभाविता की निगरानी करना और मूल्यांकन करना,
- अन्तर्राष्ट्रीय और अर्न्तक्षेत्रीय मुद्दों के समाधान हेतु पहल करना जिसे विकास एजेण्डा को गति मिल सके,
  योजनाओं और नवचार हेतु तकनीकी उन्नयन और क्षमता संवर्द्धन पर ध्यान देना।

उपर्युक्त कार्यों के साथ नीति आयोग का गठन हुआ जिससे नये वातावरण में नये कदमों का अनुपालन किया जा सके। चूँकि पिछले वर्षों में आर्थिक नीतियों में आधारभूत परिवर्तन हुये हैं। अत: इन परिवर्तनों के सफल क्रियान्वयन हेतु संस्थागत परिवर्तन किया जाना आवश्यक हो गया और नीति आयोग की स्थापना हुई।

नीति आयोग और योजना आयोग के मध्य अन्तर को श्री अरविन्द विरमानी के लेख The New Name of Planning जो The Hindu में दिनांक १९ जनवरी २०१५ को प्रकाशित हुआ, में From Yojana to NITI, what is difference से स्पष्ट किया जा सकता है। उनका मानना था कि योजना आयोग में प्रोजेक्ट और कार्यक्रमों पर बल था परन्तु नीति आयोग नीति में नीति और संस्थाएँ महत्वपूर्ण हैं। नीतियों के सफल क्रियान्वयन से ही भारत को नया कलेवर दिया जा सकता है। अभी तक गरीबी निवारण लक्ष्य था परन्तु भारत के लिये गरीबी उन्मूलन लक्ष्य होना चाहिये। शासन की भूमिका अब मात्र योजनाओं के क्रियान्वयन की नहीं रह गई है वरन् अब शासन से योजनाओं के वांछित परिणाम की भी अपेक्षा है। जैसा कि कैबिनेट में पारित प्रस्ताव में कहा गया– "The people of India have great expectations for progress & improvement in governance, through their participation... we require institutional reforms in governance & dynamic policy shifts that can seed and nurture large scale change".[2]

अत: नीति आयोग की सम्पूर्ण क्रियाकलापों को चार प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है[3] – १. नीति निर्माण और कार्यक्रम की भूमिका, २. सहयोगात्मक/ सहकारी संघवाद का वर्द्धन, ३. अनुवीक्षण एवं मूल्यांकन, ४. ज्ञान और नवोन्मेष हब का निर्माण।

अभी तक केन्द्रीयकृत योजना प्रणाली थी अर्थात् नियोजन ऊपर से नीचे की ओर उन्मुख था। इसमें योजना का निर्माण योजना आयोग करता था जिसका क्रियान्वयन गाँवों में होता था। यद्यपि विकेन्द्रीकृत प्रणाली को अपनाया गया था परन्तु यह सीमित दायरे में ही थी। अत: नीति आयोग में यह प्रक्रिया नीचे से ऊपर की ओर उन्मुख हुयी जिससे योजनाओं का निर्माण निम्न स्तर पर वांछित एवं प्राथमिक मुद्दों के अनुसार हो सके और उसका वांछित परिणाम भी प्राप्त हो सके।

योजना आयोग के क्रियाकलाप में अफसरशाही का बोल–बाला था जबकि नीति आयोग में थिंक टैंक, नवोन्मेष तथा ज्ञान हब पर बल है। इसका कार्य भारतीय शैक्षणिक तथा नीति अनुसंधान संस्थाओं का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त संस्थाओं के साथ परस्पर संवाद स्थापित करने को बढ़ावा देना है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की गुणवत्ता को हम अपने देश में स्थापित कर सकें। इससे भारत वैश्विक स्तर पर ज्ञान तथा बौद्धिक सम्पदा का हब बन जायेगा और वैश्वीकरण से उत्पन्न समस्याओं का समाधान न केवल अपने देश के लिये वरन् अन्य देशों के लिये भी कर सकेगा। यह योजना आयोग का कार्य नहीं था।

नीति आयोग विकासात्मक कार्यक्रमों में समस्त नागरिकों की भागीदारी को प्रोत्साहन देगा। इस हेतु जनता की भागीदारी, महिलाओं का सर्वोन्मुख विकास द्वारा सशक्तीकरण, युवाओं के लिये समान अवसर प्रदान करना, पारदर्शिता की स्थापना तथा जनता के अनुकूल एजेण्डा बनाना आदि प्राथमिकता होगी। इसके माध्यम से प्रभावी शासन व्यवस्था की अवधारणा को क्रियान्वित किया जा सकेगा।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जहाँ योजना आयोग नीति निर्माता के रूप में कार्य करता था तथा नीति में स्वीकृत योजनाओं हेतु कोष आबंटित करता था, राज्यों की भागीदारी नगण्य थी वहीं नीति आयोग मात्र एक सलाहकार का काम करेगा, जहाँ नीतियाँ क्रियान्वयन का अधिकार नहीं होगा और यह वित्तीय विनिधान भी नहीं करेगा। इस प्रकार यह विकेन्द्रीकृत योजना प्रणाली को सत्य रूप में प्रदर्शित करता है।

सन्दर्भ

JALAN B. (2000); *India's Economic Policy Preparing for the Twenty First Century,* Penguin Books, India.
The Hindu, 19 Jan. 2015
www. nipi.gov.in
Federalism and Indian Economy, Yojana, Vol. 59, Feb. 2015.
CHANDOKE N. & P. PRAVEEN (1999); Contemporary India : Economy, Society and Politics, Pearson, India.

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,54-59**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 12 अगस्त 2015

भारत में विनिवेश की भूमिका

डॉ० सिद्धार्थ पाण्डेय*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारत में विनिवेश की भूमिका* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सिद्धार्थ पाण्डेय* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

आजादी के बाद सुस्त पड़ी भारतीय अर्थव्यस्था को धार देने के लिए भारत के नीति नियंताओं ने सोबियत संघ के विकास माडल से प्रेरित होकर पूँजीवादी दोषों से मुक्त और समाजवादी गुणों से युक्त मिश्रित अर्थव्यवस्था को अंगीकार करने का निर्णय लिया। इसी कड़ी में सन् १९५० में एक संविधानेत्तर संस्था योजना आयोग का गठन किया गया जो पूरी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए थिंक टैंक का काम करने लगी। ब्रिटिश काल में भारतीय अर्थव्यवस्था के अत्यधिक विदोहन के कारण आधारभूत उद्योगों के साथ–साथ लघु उद्योगों और कुटीर उद्योगों को भारी क्षति उठानी पड़ी। इन उद्योगों में निवेश करने के लिए अत्यधिक पूँजी की आवश्यकता थी जो कि अकेले निजी उद्यमियों के सामर्थ्य से बाहर की बात थी अत: सरकार के समक्ष गैस, कोयला, भारी उद्योग, बिजली, स्टील, खनन, रेलवे, बन्दरगाह, शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसे सेक्टरों में निवेश बढ़ाने की चुनौती थी। बहुत कम संसाधन होने के बावजूद भी तत्कालीन सरकार ने अर्थव्यवस्था को पुन: जागृत करने का प्रयास शुरू कर दिया और सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को एक योजना के सांचे में ढालकर तीव्रतर विकास की दिशा में कदम बढाया जाने लगा। और इसी विचार धारा के फलस्वरूप सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना का कार्य शुरू हुआ। सरकार ने अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में भारी निवेश करना प्रारम्भ कर दिया। यहाँ तक कि पर्यटन क्षेत्र में भी सरकारी निवेश बड़े पैमाने पर किया गया जो कि निजी क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण व्यवस्था माना जाता है। पहली पंचवर्षीय योजना की समाप्ति पर सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की संख्या ५ थी और ९० के दशक के प्रारम्भ में सातवीं योजना की समाप्ति तक इनकी संख्या २४४ हो गयी और जिसमें ९९,३२९ करोड़ की पूँजी लगी हुयी थी। इसके बाद इनकी संख्या में २००५–०६ तक आते–आते कमी देखी गयी परन्तु इनकी कुल पूँजी में लगभग ३५०: की वृद्धि हुयी और कुल पूँजी ३,९३,०५७ करोड़ रूपए की हो गयी। केन्द्रीय सार्वजनिक उपक्रमों की प्रारम्भिक सफलताओं को देखते हुए राज्य सरकारों ने भी सार्वजनिक उपक्रमों में बढ़ चढ़कर निवेश किया और सार्वजनिक उपक्रमों की संख्या हजार को पार कर गयी। यद्यपि सरकार का मुख्य कार्य प्रशासन का होना चाहिए और अर्थव्यवस्था को बाजार की शक्तियों के हवाले छोड़ देना चाहिए, परन्तु आजादी के बाद की परिस्थितियों के कारण सरकार को सार्वजनिक उपक्रमों की

* सहायक प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, बी०एन०के०बी० पी०जी० कॉलेज, अम्बेडकरनगर (उत्तर प्रदेश) भारत। (पुनः प्रकाशन)

© लेखक 2017, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

स्थापना करनी पड़ी। इसके पीछे सरकार के निम्नलिखित उद्देश्य थे– १. अर्थव्यवस्था में भारी पूँजी निवेश से उत्पादन बढ़ाना जिससे अत्यधिक रोजगार का सृजन हो सके। २. सरकार के पास उपलब्ध संसाधनों का उचित प्रयोग सुनिश्चित करना। ३. निजी क्षेत्र को भी निवेश के लिए प्रोत्साहित करना। ४. निजी क्षेत्र को भारतीय बाजार पर एकाधिकार स्थापित करने से रोकना। ५. निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र के मध्य स्वास्थ्य प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न कर उपभोक्ताओं को लाभ पहुँचाना।

हालांकि उपर्युक्त वर्णित उद्देश्य काफी हद तक प्राप्त किए गए परन्तु वर्ष प्रति वर्ष इनसे हानि भी होने लगी। अत: इन उपक्रमों में सरकारी हिस्सेदारी को कम करने की जरूरत समझी जाने लगी और इस प्रकार सार्वजनिक उपक्रमों में मौजूदा सरकार की हिस्सेदारी को कम करना ही विनिवेश कहलाता है। दूसरे शब्दों में विनिवेश का अर्थ सरकारी उपक्रमों में बन्द सरकारी पूँजी को शेयरों के माध्यम से निजी निवेशकों, विदेशी निवेशकों अथवा साधारण लोगों के हाथ में बेचना होता है।

भारत में विनिवेश नीति का क्रमित विकास

भारत को १९९० में घोर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। उस समय भारत के नीति नियंताओं के समक्ष भारतीय अर्थ–व्यवस्था को उदार बनाने के लिए मजबूर होना पड़ा; और यही से भारत में विनिवेश कार्यक्रम की शुरूआत हुयी। इसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए वित्तमंत्रियों के बजट भाषण का अवलोकन निम्नलिखित हैं :

- १९९१–९२ के बजट भाषण में यह उल्लखित किया गया कि गैर महत्व के केन्द्रीय सार्वजनिक उपक्रमों में सरकारी इक्विटी का २०: विनिवेश कर दिया जाएगा; और यही से विनिवेश का श्रीगणेश हुआ। उस समय ३० अलग–अलग केन्द्रीय सार्वजनिक उपक्रमों में सरकार की शेयर धारिता को अल्पांश बिक्री की नीति के तहत चुनिंदा संस्थानों (एल० आई० सी०, जी० आई० सी०, यू० टी० आई०) को समूहों में बेंच दी गयी। इन शेयरों को समूह में इसलिए बेचा गया ताकि आकर्षक शेयरों के साथ–साथ कम आकर्षक शेयरों की भी बिक्री की जा सके।
- १९९६ के बाद कुछ चुनिंदा उपक्रमों के शेयरों को ग्लोबल डिपाजिटरी रिसिप्ट के माध्यम से बेचा गया। इनमें महानगर टेलीफोन लिमिटेड (१९९६–९७) तथा विदेश संचार निगम लिमिटेड ने जी०टी०आर० बाजार में प्रवेश करने के अवसर का उपयोग किया
- विनिवेश पर गठित रंगराजन समिति ने अप्रैल १९९३ में सिफारिस की थी कि विनिवेशित की जाने वाली इक्विटी की प्रतिशतता सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों के लिए सामान्यत: ४९: से कम और अन्य उद्योगों के लिए ७४: से अधिक होनी चाहिए।
- १९९६–९७ के बजट भाषण में एक विनिवेश आयोग की स्थापना पर बल दिया गया। इस आयोग का उत्तरदायित्व विनिवेश से प्राप्त ध नराशि को खर्च करने के लिए उचित सुझाव देना था। अत: २३ अगस्त १९९६ को ३ वर्ष की अवधि के लिए एक स्वतंत्र संविधानेत्तर तथा परामर्श– दात्री संस्था के रूप में एक विनिवेश आयोग की स्थापना की गयी। श्री० जी०बी० रामकृष्णनन इसके पूर्णकालिक सदस्य थे जबकि चार अंशकालिक सदस्य और एक पूर्णकालिक सचिव सदस्य की नियुक्ति इस आयोग के अन्तर्गत की गयी।
- इसके बाद १९९८–९९ के बजट भाषण में यह घोषणा की गयी कि सामान्य मामलों में केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में सरकारी शेयर धारिता कम करके २६: तक की जाएगी। जबकि सामरिक महत्व के केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में अधिकांश शेयर धारिता सरकार अपने पास बनाए रखेगी। इसके बाद १९९९ में कांग्रेस सरकार का पतन हो गया और छक। सरकार के आने के बाद विनिवेश प्रक्रिया को और आगे बढ़ा दिया गया। १९९९–२००० बजट भाषण में सरकार ने महत्वपूर्ण इकाइयों को सुदृढ़ करने और गैर महत्वपूर्ण इकाइयों का विनिवेश कर दिए जाने का उल्लेख किया गया।
- २०००–२००१ के बजट भाषण में यह घोषणा की गयी कि केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को नए वातावरण में नयी प्रतिस्पर्द्धा को सह सकने में सक्षम बनाया जाय ताकि वे उन्नति कर सकें। इसके बाद १७ मई २००४ में नई सरकार के गठन के साथ ही विनिवेश नीति में परिवर्तन कर दिया गया परन्तु उसके बाद भी विनिवेश का कार्यक्रम जारी रहा।

विनिवेश की आवश्यकता

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से भारत का झुकाव समाजवाद की तरफ रहा है। और इसी झुंकाव के चलते उत्पादन, वितरण एवं मूल्य निर्धारण का अधिकार सरकार अपने हाथ में रख सकती थी। परन्तु मिश्रित अर्थ–व्यवस्था होने के कारण ऐसा करना सम्भव नहीं था। परन्तु काफी हद तक भारतीय बाजार सातवीं योजना की समाप्ति तक सरकारी नियंत्रण में था। फलस्वरूप बाजार अपनी पूर्ण क्षमता पर कार्य नहीं कर पा रहा था। इस विवशता को दूर करने के लिए भारतीय बाजार को सम्पूर्ण विश्व के लिए खोलने का निर्णय लिया गया और भूमण्लीयकरण का दौर भारत में भी तत्कालीन वित्तमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह जी के नेतृत्व में शुरू हुआ। भूमण्डलीकरण के उस दौर में सरकारी नियंत्रण में मौजूद उपक्रम वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा को झेलने में सक्षम हो इसलिए उनकों

और अधिक दक्ष बनाने के लिए उनमें विनिवेश करना आवश्यक समझा जाने लगा। जिससे इन उद्योगों की बढ़ती हुयी पूँजी मांग को पूरा किया जा सके जो कि विनिवेश से प्राप्त पूँजी से ही सम्भव है और इनके कार्य निष्पादन की दक्षता बढ़ायी जा सके। प्रारम्भ में जिन सार्वजनिक उपक्रमों के बल पर भारतीय अर्थव्यवस्था की दशा में व्यापक बदलाव देखने को मिला बाद में उन्ही उपक्रमों में से कुछ भारत सरकार के लिए सफेद हाथी साबित होने लगे। इनमें से कुछ फायदे में चल रहें थे, कुछ घाटे में और कुछ उपक्रमों का तो शून्य फायदा हो रहा था। इसमें से जो उपक्रम फायदे में चल रहे थे वो भी अपनी पूर्ण क्षमता पर कार्य नहीं कर पा रहे थे इसके पीछे एक प्रमुख गैर आर्थिक वजह बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार और सरकारी कर्मचारियों की अकर्मण्यता थी।

सरकार का प्रमुख कार्य सामाजिक कल्याण को सुनिश्चित करना होता है। अत: सरकार के पास और अधिक पूँजी नहीं थी जो सामाजिक कल्याण को छोड़कर लाभ के उद्देश्य से किए गए व्यवसाय में लगायी जाय। फलस्वरूप ये सार्वजनिक उपक्रम पूँजी की कमी से ग्रसित हो गए जिसके कारण इनकी दक्षता प्रभावित होने लगी और इनका लाभ भी प्रभावित होने लगी प्रत्येक वर्ष घाटे में चल रहे सरकारी उपक्रम बजट का एक हिस्सा अपने नाम करने लगे इससे विवश होकर सरकार को विनिवेश का फैसला लेना पड़ा।

वर्ष २०१२–१३ में केन्द्रीय सार्वजनिक उपक्रमों से कुल मिलाकर १,३५०४८.०४ करोड़ रूपए का शुद्ध लाभ हुआ। जिसमें महारत्न कम्पनी आयल एण्ड नेचुरल गैस कार्पोरेशन ;व्छळब्द्ध का सर्वाधिक योगदान १५.५०: था। परन्तु इसी वर्ष केन्द्रीय सार्वजनिक उपक्रमों से कुल मिलाकर २८,२६०.५० करोड़ का घाटा हुआ। जिसमें ठैछस् का सर्वाधिक योगदान २७.९०: था। इस स्थिति को और अधिक स्पष्ट रूप से निम्नलिखित तालिका से समझा जा सकता है :

तालिका – १

क्रम सं०	के०सा०क्षे०उ० का नाम	शुद्ध हानि	करोड़ में कुल हानि (प्रतिशत में)
१.	भारत संचार निगम लि०	७८८४.४४	२७.९०%
२.	महानगर टेलीफोन निगम लि०	५३२१.१२	१८.८३%
३.	एयर इंडिया लि०	५१९८.५८	१८.४०%
४.	चेन्नई पेट्रोलियम कार्पोरेशन लि०	१७६६.८४	६.२५%
५.	हिन्दुस्तान फोटोफिल्म मैनुफैक्चूरिंग कं०लि०	१५६०.५९	६.२५%
६.	हिन्दुस्तान केबल्स लि०	८८५.०९	३.१३%
७.	मंगलोर रिफायनरी एण्ड पेट्रोकेमिकल्स लि०	७५६.९१	२.६८%
८.	भारत पेट्रो रिसोसेज लि०	३८२.६४	१.३५%
९.	हिन्दुस्तान फर्टिलाइजर कार्पोरेशन लि०	३८०.५३	१.३४%
१०.	फर्टीलाइजर्स एण्ड केमिकल्स (त्रावणकोर) लि०	३५३.९६	१.२५%
	कुल हानि (१–१०)	२४४९९०.६३	८८.६६%
	घाटे में चल रहे उपक्रमों का कुल शुद्ध घाटा	२८९२६०.५०	१००%

उपरोक्त तालिका में घाटे में चल रहे शीर्ष १० उपक्रमों का घाटा प्रदर्शित है जो कि कुल घाटे का ८८.६६: है। इसके अतिरिक्त और भी सार्वजनिक उपक्रम भी है जो घाटे में चल रहे है। इस प्रकार केन्द्रीय सार्वजनिक उपक्रमों का कुल शुद्ध घाटा वर्ष २०१०–१३ में २८,२६०.५० करोड़ रूपये था।

अत: यदि सरकार घाटे में चल रहे सार्वजनिक उपक्रमों को बेच देतीं हैं अर्थात् १००: हिस्सेदारी का विनिवेश कर देती है। तो इन उपक्रमों पर अत्यधिक धन खर्च करने से बचा जा सकता है और इन उपक्रमों का पुनरूद्धार भी सम्भव हो सकेगा। परन्तु अब यह प्रश्न उठता है कि जो उपक्रम पहले से ही फायदा में चल रहे है। उनमें क्यों विनिवेश किया जाय? इस प्रश्न के उत्तर के लिए विभिन्न तर्क है तथा इनमें विनिवेश करने का विरोध भी विभिन्न संगठनों द्वारा किया जा रहा है। परन्तु इन का लाभ कमाने वाले उपक्रमों का जो लाभ हो रहा है यदि उनकी तुलना हम निजी क्षेत्र के उपक्रम से करते है तो सार्वजनिक क्षेत्र में उपक्रम पीछे छूट जाते हैं। अत: स्पष्ट है कि ये उपक्रम अपनी पूर्ण क्षमता पर कार्य नहीं कर पा रहे हैं।

फोर्ब्स पत्रिका द्वारा प्रकाशित ;ळसवइंस २०००द्ध में कुल ५४ भारतीय कम्पनियों को सूचीबद्ध किया गया है। जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र के केवल ११ उपक्रम ही सूचीबद्ध है। इन कम्पनियों की सूची निम्नलिखित है।

तालिका – २

क्रम सं०	कम्पनी का नाम	विश्व में रैंक
१.	रिलायंस इण्डस्ट्रीज	१३५
२.	एस०बी०आई०'	१५५
३.	ओ०एन०जी०सी०'	१७६
४.	आई०सी०आई०आई०बैंक	३०४
५.	टाटा मोटर्स	३३२
६.	इण्डियन आयल'	४१६
७.	एच डी एफ सी० बैंक	४२२
८.	कोल इंडिया'	४२८
९.	एल एण्ड टी	५००
१०.	टी०सी०एस०	५४३
११.	भारती एयरटेल	६२५
१२.	एक्सिस बैंक	६३०
१३.	इन्फोसिस	७२७
१४.	बैंक आफ बड़ोदा'	८०१
१५.	महिन्द्रा एण्ड महिन्द्रा	८०३
१६.	आई टी सी	८३०
१७.	बिप्रो	८४९
१८.	भेल'	८७३
१९.	गेल'	९५५
२०.	टाटा स्टील	९८३

स्रोत : वर्ष २०१५ में फोर्ब्स पत्रिका द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट–ग्लोबल २०००

तालिका–२ से स्पष्ट है कि यदि हमे अपने देश की कम्पनियों को वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा के अनुकूल ढालना है तो उन्हें विनिवेशित कर दी जानी चाहिए।

विनिवेश नीति

विनिवेश नीति का निर्धारण वित्तमंत्रालय के अधीन विनिवेश विभाग करता है। मौजूदा विनिवेश नीति की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित है– १. भारत के नागरिकों को यह अधिकार है कि वे सरकारी क्षेत्र की कम्पनियों में शेयरी धारिता के एक हिस्से के शेयर धारक बनें। २. सरकारी क्षेत्र के उपक्रम राष्ट्र की निधि है और यह निधि आम जनमानस के हाथ में होनी चाहिए। ३. विनिवेश करते समय सरकार अधिकांश शेयर धारिता अर्थात् कम से कम ५१: तथा उपक्रमों का प्रबंधन नियंत्रण अपने पास रखें।

विनिवेश सम्बन्धी दृष्टिकोण

०५ नवम्बर २००९ को सरकार ने लाभ अर्जित करने वाली सरकारी कम्पनियों में विनिवेश करने के लिए निम्नलिखित कार्य योजना अनुमोदित की है :

१. केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के पहले से ही सूचीबद्ध, लाभ अर्जित करने वाले उपक्रम (जो अनिवार्य १०: की आम जनमानस की भागीदारी की शर्त को पूरा नहीं करते) उनमें सरकार द्वारा ''बिक्री की पेशकश'' या केन्द्रीय सार्वजनिक उद्यमों द्वारा शेयरों के नए निर्गम या दोनों के संयोजन से इस शर्त का पालन किया जाय।

२. केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के वे उपक्रम जिनका संचित घाटा नहीं है। तथा जो पिछले तीन वर्षो से लगातार निबल लाभ कमा रहें है, उन्हें सूचीबद्ध किया जाए।

३. विनिवेश के सभी मामलों में सरकार कम से कम ५१: इक्विटी बनाए रखेगी तथा प्रबंधन नियंत्रण अपने हाथ में रखेगी।

४. विनिवेश विभाग संबन्धित प्रशासनिक मंत्रालयों के परामर्श से केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उद्यमों की पहचान करेगा और जिन मामलों में सरकारी इक्विटी की पेशकश आवश्यक हो, उसके प्रस्ताव सरकार को प्रस्तुत करेगा।

अन्य विकसित देशों के सापेक्ष भारत की स्थिति

भारत १९९२ तक एक बन्द अर्थव्यवस्था वाला देश बना रहा। इसके बाद से भारत में सुधारों का दौर शुरू हुआ। तब से लेकर लगभग २२ वर्षो में भी भारत में विनिवेश प्रक्रिया की प्रगति सन्तोषजनक नहीं रही। यदि हम भारत की तुलना ब्रिटेन, चीन लैटिन अमेरिका, दक्षिण कोरिया, जापान, ताइवान, फिलीपींस, रूस जैसे देशों से करें तो यह ज्ञात होता है कि विनिवेश से अर्जित धन भारत में अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है। १९९७ में विश्व बैंक द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट में कहा गया है कि इस वर्ष विकासशील देशों को विनिवेश से कुल ६७ मिलियन डालर राशि मिली परन्तु जिसमें भारत का हिस्सा मात्र १ मिलियन था।

यदि हम ब्रिटेन की विनिवेश प्रक्रिया को देखें तो ब्रिटेन में भी १९८० के बाद निजीकरण का दौर शुरू हो गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री माग्रेट थ्रेचर ने बड़ी तीव्र गति से सार्वजनिक उपक्रमों में विनिवेश करना शुरू कर दिया। ब्रिटेन ने मात्र ११ वर्षों में टेलीकाम, विजली, गैस सप्लाई तथा जलबोर्ड सहित कुल ६७० उपक्रमों का पूरी तरह से निजीकरण कर दिया गया। इसकी सफलता से प्रेरित होकर पूर्वी यूरोप के देशों ने भी पूँजीवादी धारणा को अपना लिया यूरोप का एक अन्य देश जर्मनी ने मात्र २ वर्षो के अन्दर १३,५०० उपक्रमों का निजीकरण कर दिया और जर्मनी आज विश्व का दूसरा सबसे बड़ा निर्यातक देश है। अत: यह निष्कर्ष निकलता है कि इन देशों में निर्णय लेने की प्रक्रिया कितनी तेज है जबकि भारत में अब भी नीति गत सुस्ती छायी हुयी है।

उपसंहार

सरकार एक ऐसे सार्वजनिक क्षेत्र के लिए वचनबद्ध है जिसके सामाजिक उद्देश्यों को इन उपक्रमों के वाणिज्यिक क्रिया कलापों द्वारा पूरा किया जा सके। सरकार प्रतिस्पर्द्धात्मक वातावरण में काम करने वाली सफल, लाभ अर्जित करने वाली कम्पनियों को पूर्ण प्रबंधकीय और वाणिज्यिक स्वायत्ता सौंपने के लिए बचनबद्ध है। अत: लाभ कमाने वाले उपक्रमों में उनकी पूँजी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विनिवेश तो किया जाय, परन्तु उनका निजीकरण कर दिया गया तो इनसे मिलने वाला लाभ केवल एक ही व्यक्ति के हाथ में जाएगा। और यदि इन उपक्रमों के लाभ मिल रहा हो चाहे वह कुछ कम ही क्यों न हो, यह लाभ पूरे समाज के लिए होगा। और जो उपक्रम घाटे में चल रहें हैं तथा जिन क्षेत्रों में निजी उपक्रम अपनी पूर्ण क्षमता पर कार्य कर रहें है। ऐसे क्षेत्रों के उपक्रमों का निजीकरण कर देना फायदेमन्द साबित होगा। भारत सरकार के समक्ष चालू खाते का घाटा एक बड़ी चुनौती है जो कि मुद्रा स्फीति के लिए एक उत्तरदायी कारण है। यदि सरकार सार्वजनिक उपक्रमों से कुछ पूंजी निकालती है। तो चालू खाते के घाटे पर कुछ अंकुश लगेगा।

परन्तु सरकार प्रत्येक वर्ष जितना लक्ष्य रखती है। उतना पूरा नहीं कर पाती है जो कि सरकार की इच्छाशक्ति को प्रदर्शित करता है। पिछले पाँच वर्षो का यदि हम रिकार्ड देखें तो इससे सरकार की नीतिगतपंगुता स्पष्ट होती है :

तालिका – ३

वर्ष	लक्ष्य (करोड़ रू०) में	प्राप्त धनराशि (करोड़)
२००९–१०	कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं	२३,५५३
२०१०–११	४०,०००	२२,१४४
२०११–१२	४०,०००	१३,८९४
२०१२–१३	३०,०००	२३,९५६
२०१३–१४	४०,०००	१५,८१९
२०१४–१५	३६,९२५	१,७७१

जिस प्रकार से यदि शरीर के किसी भी अंग में कैंसर हो जाता है तो उस अंग को काटकर निकाल दिया जाता है ठीक उसी प्रकार जितने सार्वजनिक उपक्रम घाटे में चल रहे है। उन्हें तत्काल विनिवेशित करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

भारत सरकार, आर्थिक सर्वेक्षण– २०१३–१४

ANSHUMAN, V. RAVI, Disinvestment of PSUs Economics and Political weekly, March 8, 2013

The Indian Journal of Commerce, vol. 57, Jan-March 2004

"World Bank Report-2002" world Development Indicatior.

योजना, कुरूक्षेत्र– मासिक पत्रिका

लेखकों के लिए निर्देश

शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ० मनीषा शुक्ला, प्रधान सम्पादिका आन्वीक्षिकी भारतीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com)

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें - शीर्षक, सारांश, पाण्डुलिपि, पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

शीर्षक : शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें, किन्तु अपना पूरा नाम, पता, संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय, दूरभाष अथवा मोबाइल, फैक्स, ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

सारांश : कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

पाण्डुलिपि : इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी, जो ५ से १० पृष्ठ तक होनी चाहिए। शोधपत्र १० पृष्ठ से (सारांश, शब्द संक्षेप, संदर्भ सूची समेत) अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र (१० पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है, पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

सन्दर्भ वर्णमालाक्रमांक : शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष, लेखक, पृष्ठ संख्या, भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

पुस्तक : प्रकाशक का नाम, संस्करण संख्या, प्रकाशन वर्ष, लेखक का नाम, पुस्तक का नाम, पृष्ठ संख्या

पत्रिका : पत्रिका का नाम, लेख का शीर्षक, लेखक का नाम, प्रकाशक का नाम, अंक संख्या/ माह, वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

समाचार पत्र : प्रकाशक, तिथि, सन्, पृष्ठ संख्या।

इण्टरनेट : वेबसाइट, पृष्ठ संख्या, मुख्य शीर्षक, अन्तः शीर्षक।

मानचित्र एवं सारणी : मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें (उदाहरण सारणी संख्या १)

विशेष : कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना बायोडाटा, फोटो, स्वपता लिखा लिफाफा (100 रू० के टिकट सहित) भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए०पी०एस० प्रियंका रोमन (एपीएस डिजाइनर 4.0) में तैयार सी०डी० के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक की स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिक से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अन्तिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

प्रकाशन
अन्य एम.पी.ए.एस.वी.ओ. पत्रिकाएँ
सार्क अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका
www.anvikshikijournal.com

अन्य सहसंयोजन
एशियन जर्नल ऑफ माडर्न एण्ड आयुर्वेदिक मेडिकल साइंस
अर्द्धवार्षिक पत्रिका
www.ajmams.com

www.anvikshikijournal.com